राजद समाचार

आजादी, समानता और भाईचारा

अंक - 15 मासिक अक्टूबर, 2022 सहयोग राशि - 20 रुपये

इस बार

मुलायम सिंह यादव स्मरण

मुलायम सिंह पर विद्याभूषण रावत 03

मुलायम का हिन्दी प्रेम दयानंद पांडेय 05

रोजगार संकट पर बी. सिवरामन 09

रोजगार का तेजस्वी मॉडल दुर्गेश कुमार 11

रोजगार की सरकार जंगबहादुर बेदिल 12

डॉ. राममनोहर लोहिया पर विशेष

डॉ. राम मनोहर लोहिया जीवन-झांकी 13

डॉ. लोहिया पर धर्मवीर भारती 16

लोहिया को देखा-सुना था प्रकाश चंद्रायन 20

नर-नारी समता डॉ. राममनोहर लोहिया 20

हिंदू बनाम हिंदू राममनोहर लोहिया 22

कांशीराम पर डॉ. दिनेश पाल 27

कवि का पन्ना में रामबचन यादव 28

उर्मिलेश की यात्रा पुस्तक पर नरेश नदीम 29

अधिकार के सौ साल सुरेश कुमार 30

रामचंद्र मांझी पर डॉ. जैनेन्द्र दोस्त 32

पार्टी के दिल्ली अधिवेशन की रिपोर्ट 33

सम्पादक

अरुण आनंद

सहयोग

कवि जी/ डॉ.दिनेश पाल

जगदानन्द सिंह

प्रदेश अध्यक्ष, राष्ट्रीय जनता दल, वीरचन्द पटेल पथ, पटना-1 द्वारा प्रकाशित एवं वितरित।

संघ प्रमुख के एकांत प्रलाप

इस बार विजयादशमी के मौके पर नागपुर से संघ प्रमुख मोहन भागवत ने एवरेस्ट वीमेन संतोष यादव के विशिष्ट आतिथ्य में जो संबोधन दिया है उसमें महिला समानता, जातिभेद, जनसंख्या नियंत्रण, रोजगार और मातृभाषा के उत्थान की बातों पर खासतौर से बल दिया गया है। इनमें से कोई भी तथ्य न नये हैं, ना उनके पहले के निर्धारित एजेंडे और तय वैचारिकी से अलग। असमानता और गैर बराबरी की बुनियाद पर खड़े सनातन हिंदू धर्म के उनके मॉडल की जो रुढिग्रस्त वैचारिकी रही है, आर.एस.एस. प्रमुख अपने 1 घंटे 3 मिनट 9 सेकंड के भाषण में उसी को विस्तार देते हुए तर्क और विज्ञान की जगह आचार, मयार्दा और आस्था में ही भारत की उन्नति की पेंग हांकते नजर आये।

आर.एस.एस. भारतीय जनता पार्टी का मातृ संगठन है। संघ का यह आइडिया पहली बार नहीं प्रकट हुआ है जब कोई महिला और वह भी ओबीसी और उसमें भी यादव समाज की महिला के चयन पर आकर टिका है। इसके पहले भी उन्होंने महिलाओं को इस मौके पर अपना विशिष्ट आतिथ्य दिया है, लेकिन उन्हें कितना और कैसे इस्तेमाल करना है, की स्पष्ट रणनीति के साथ। इस बार संतोष यादव को आगे करने का उनका मकसद महिला मुद्दे की व्यापकता में जाना उतना नहीं रहा जितना हिंदी पट्टी में यादव समुदाय को भाजपा के साथ कनेक्ट करने का रहा है। वर्तमान में यही वह जाति समूह है जो पूरी तरह से भगवा के नियंत्रण में नहीं आया है। उनकी भरपूर कोशिश उन्हें अपने नियंत्रण में लेने की रही है। संतोष यादव ने अपने उद्बोधन में जिस तरह से संघ के कार्यों और तथाकथित सनातन संस्कृति को उत्कृष्ट बताया, वह संघ के एजेंडा को पुष्ट करता है।

महिलाओं के बारे में आर.एस.एस. प्रमुख ने बल देकर कहा कि वह भी समाज निर्माण का महत्वपूर्ण घटक हैं और पुरुषों से कमतर नहीं। लेकिन यह महज कहने भर को है। सच तो यह है कि व्यापक महिला समाज के हित की बात करें तो आज भी संघ सबसे जड़ और यथास्थितिवादी संगठन ठहरता है। महिला मुद्दा उनके लिए प्रतीक मात्र रहे हैं। आज तक संघ प्रमुख, उसकी कार्यकारिणी और उनके सम्पूर्ण सांगठनिक ढांचे में न महिलाएं रही हैं, न दलित, आदिवासी और न पिछड़े। इन हाशिये के वर्ग समूह के सवाल को उन्होंने कभी मुखर होकर नहीं उठाया। हां, प्रतीक के रूप में उनके इस्तेमाल में वे आगे रहे हैं। जाति और महिलाओं के सवाल पर उनका रुख देखें- बिल्किस बानो के बलात्कारी, हत्यारे को कोर्ट से सजा होने के बाद भी जिस तरह गुजरात की सरकार ने उसे रिहा किया वह इनकी बर्बता का चरम है।

आर.एस.एस. ने हिंदू धर्म के आधार वर्णाश्रम धर्म का कभी विरोध नहीं किया है। आर.एस.एस. खुद को इस धर्म का सबसे तथाकथित बड़ा झंडाबरदार मानता है। वर्णाश्रम धर्म, महिलाओं, अत्यंजों और अल्पसंख्यकों को पशु से भी बदतर मानता है। हमारे यहां धार्मिक कर्मकांडों, व्रत त्योहारों के हजारों अनुष्ठानों से भरे कर्मकांडों की न खत्म होने वाली परिपाटी को आखिर खाद पानी कौन दे रहा है, इससे किस का मकसद हल होने वाला है यह सहज ही विचार योग्य प्रश्न है। इन धार्मिक विषयों पर भागवत की चुप्पी उन्हें परमुखापेक्षी बनाये रखने की है, जिस पर संघ में न पहले बात होती थी

न आज ही होती है। दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि धार्मिक आडंबर उनके वे औजार रहे हैं जिनके सहारे वे भारतीय सनातन संस्कृति की दम्भोक्ती भरते रहे हैं।

उनकी यह चिरप्रतिक्षित मांग रही है कि शरीयत की तरह वर्तमान संविधान की जगह मनुस्मृति का विधान समाज पर लागू हो। उनके आनुषंगिक संगठन विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल हर उस विरासत को कलंक मानते हैं, जो उनके हिंदू राष्ट्र मिशन में बाधा खड़ी करते रहे हैं। पादरी ग्राहम स्टेंस और उनके बच्चे की हत्या से लेकर कर नरेंद्र दाभोलकर और गौरी लंकेश के साथ जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है। इतिहास की हर वह विरासत जिसमें हमारी भारतीयता बसती है, को वे मटियामेट कर देने को शौर्य मानते हैं। यहां तक कि ताजमहल सरीखे ऐतिहासिक प्रतीक उनके लिए आक्रांताओं से भरी कारगुजारियां मात्र हैं। यह अकारण नहीं कि भाजपा शासनकाल में विकास और विज्ञान की बात न होकर निखालिस अंधविश्वास, आस्था, भक्ति और पूजा पाठ में ही सारे देश को गर्क किया गया। विश्वविद्यालय हो या राष्ट्रीय इतिहास परिषद- हर जगह वैज्ञानिक पाठ्यक्रमों की जगह अंधविश्वास पैदा करने वाल पाठ्यक्रम लागू करना इस सरकार की प्राथमिकता रहे। उन्होंने नई शिक्षा नीति और हिंदी की जैसी वकालत की वह हिन्दू, हिंदी और हिन्दुस्थान की उनकी विभाजनकारी नीति का ही विस्तार है। जिन दिनों दुनिया नये आविष्कारों में लगी थी हम निष्क्रिय आध्यात्म और गौ प्रेम में लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि दुनिया के छोटे-छोटे देश हमसे आगे निकल गये और दैनिक उपयोग के लिए हम उनके आगे हाथ फैलाने को अभिशप्त हो गए। इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि विश्वविद्यालय सिलेबस में वैदिक पाठ्यकम और राष्ट्रीय परिषद की पाठ्य पुस्तकों से ज्ञान विज्ञान को हटाकर अंधविश्वास डाला जा रहा है।

जातिगत असमानता के नाम पर मोहन भगवत ने घोड़ी की सवारी, श्मशान और मंदिर प्रवेश में व्याप्त असमानता का जिक्र किया। यह सही है कि अभी भी देश के कुछ हिस्सों में ऐसे आदिम अवशेष बरकार हैं, लेकिन आज शासन-प्रशासन, मीडिया-एकेडमिया, ज्ञान-विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में समान भागीदारी का सवाल ज्यादा मुखर है। कैसी अजीब बात है कि कोई संघ प्रमुख संघ की स्थापना की 73वीं वर्षगांठ पर जातिगत विषमता के मुद्दे को पहली बार उठाता है और 100 साल पीछे की सोचता है। जातिगत असमानता को खत्म करने का मतलब है जाति प्रथा के समूल उच्छेदन के लिए समग्र एजेंडा को रखना और जाति प्रथा का समर्थन करने वाले हिन्दुत्ववादी सिद्धांतों को खारिज करना।

इसी तरह की कोरी कल्पना उनका जनसंख्या नियंत्रण एजेंडा भी रहा है। इसमें भी उनकी कोशिश हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण बढ़े इसपर ज्यादा रहती है। उनका यह कहना कि मुसलमानों की जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है और हिंदू अल्पसंख्यक होते जा रहे हैं इसे आबादी के असंतुलन के रूप में देखना उनकी मंशा को स्पष्ट करता है। जबकि भारत में दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर करीब-करीब स्थायित्व ग्रहण कर चुकी है। खुद उनके केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री मनसुख माडविया ने हाल में संसद में जनसंख्या विस्फोट और विशेष नियंत्रण उपायों को गैर जरूरी बताया है। व्यापक समावेशी विकास तो तब होगा जब उपयुक्त भ्रामक विचार सारणियों से हम बाहर निकलेंगे और समाज के सभी वर्गों को उनकी उचित हिस्सेदारी सुनिश्चित करेंगे।

मोहन भागवत का बयान, भाजपा का लगातार आम आदमी पार्टी के मंत्री राजेन्द्र पाल गौतम द्वारा भीमराव की 22 प्रतिज्ञाओं के सार्वजनिक पाठ के बाद इस्तीफे के लिए दबाव बनाया जाना और अंततः उनका इस्तीफा यह घटनाक्रम स्पष्ट करता है कि मनुवादी दलों के लिए आंबेडकर महज प्रतीक के तौर पर, वोट बैंक हासिल करने के टूल्स भर हैं। आंबेडकर का जो असल चिंतन, और उनका सपना था, उससे इनका न कोई सरोकार है और न ही वे वहां पहुंचना चाहते हैं। जिस तरह बुद्ध के असली सरोकार को समाप्त कर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में प्राण प्रतिष्ठा की कोशिश की जाती रही है, उनके बाद के बदलावों को भी उसी तर्ज पर वैष्णववादी सिद्ध करना इनका संघ का हिडेन एजेंडा रहा है।

राजद समाचार का यह अंक प्रसिद्ध समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया पर एकाग्र है। उम्मीद है पाठक बदले हुए समय में उनके विचारों को आत्मसात कर अपने को ऊजार्वान बना पाएंगे। प्रसिद्ध समाजवादी नेता मुलायम सिंह यादव का अचानक निधन हो गया। वह इधर लगातार अस्वस्थ रह रहे थे। डॉ. राममनोहर लोहिया और चौधरी चरण सिंह ने जिस समाजवादी राजनीति की नींव रखी थी, मुलायम सिंह उस विचार सारणी के सबसे बड़े प्रयोगकर्ता थे। राजद समाचार उनकी स्मृति को नमन करता है।

अंत में हम अपने सुधी पाठकों से विनम्र अनुरोध करेंगे कि वे राजद समाचार के बारे में अपनी प्रतिक्रिया से हमें अवगत कराते रहें। अपने क्षेत्र और देश समाज पर अपने विचार अभिव्यक्त करते रहें।

अरुण आनंद

■

राजद के अगला अंक में पढ़ें

- क्रिस्तोफ जाफ्रलो का आर.एस.एस. भाजपा नीत प्रतिक्रांति।
- राष्ट्रीय जनता दल के दिल्ली अधिवेशन पर राष्ट्रीय प्रधान महासचिव का प्रतिवेदन एवं अन्य प्रस्तावों का विस्तृत अंश।
- मशहूर पत्रकार पी.साईनाथ के व्याख्यान गैर बराबरी का जनतंत्र।
- जितेंद्र कुमार का लेख सामाजिक न्याय को कैसे लागू करे बहुजन नेतृत्व।
- पठन-पाठन में नई किताबों एवं पत्रिकाओं पर केन्द्रित समीक्षाएं एवं और भी बहुत कुछ ।

आपसे आग्रह है कि देश, दुनिया से संदर्भित मौजूदा परिप्रेक्ष्य को विश्लेषित करता आलेख अगर है तो हमें जरूर भेजें।

हमारा पता है:

सम्पादक

राजद समाचार,

2 वीरचंद पटेल पथ, पटना-800001

विद्या भूषण रावत

मुलायम सिंह यादवः एक जनपक्षधर नेता का अवसान

मुलायम सिंह यादव हमारे बीच से चले गए। उनके जैसा धरतीपुत्र कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। आज के दौर मे उनकी कमी बेहद खलेगी। वह बहुत समय से बीमार चल रहे थे। शरीर साथ नहीं दे रहा था फिर भी उनकी उपस्थिति समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ताओ में जोश भर देती थी। 82 वर्षीय मुलायम सिंह यादव का राजनीतिक जीवन बेहद संघर्षपूर्ण था। वह समाजवादी विचारधारा में डाक्टर राम मनोहर लोहिया के सच्चे उत्तराधिकारी थे। वह पहली बार 1967 से जसवंतनगर सीट से संयुक्त समाजवादी पार्टी के टिकट पर विधानसभा के लिए चुने गए। 1975 तक वह लगातार विधायक रहे और आपातकाल के दौरान 18 महीने जेल की सजा भी काटी। आपातकाल के विरोध का समय भी समाजवादी धारा के लोगों के एक साथ आने का समय था और इस आंदोलन का नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने किया। इस दौर में भी बहुत से नेता अन्य पार्टियों से आए। 1977 में उत्तर प्रदेश में विपक्ष की सरकार बनी तो राम नरेश यादव मुख्यमंत्री बन गए। यह वह दौर था जब चरण सिंह बहुत सशक्त नेता थे और उत्तर प्रदेश में उनकी तूती बोलती थी। राम नरेश यादव एक सधे हुए नेता माने जाते थे और उन्होंने मंत्रिमंडल मे मुलायम सिंह यादव को कृषि और पशुपालन विभाग दे दिया। जनता पार्टी की सरकार ठीक से चल नहीं पाई और 1980 में मुलायम सिंह यादव चरण सिंह के साथ लोकदल में रहे। केंद्र में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सत्ता में वापसी कर ली थी और उत्तर प्रदेश मे भी कांग्रेस ने एक नए व्यक्ति विश्वनाथ प्रताप सिंह पर अपना दांव लगाया।

मुलायम सिंह यादव लोकदल के अध्यक्ष बने और 1982 में तत्कालीन सरकार द्वारा डकैत विरोधी अभियान चलाए जाने के कारण पिछड़े वर्ग के लोगों पर हो रहे अत्याचार के प्रश्न को उन्होंने बहुत सशक्त तरीके से उठाया। दरअसल, यह वह समय भी था जब धीरे-धीरे उन्होंने स्वयं को स्थापित करना शुरू किया। चरण सिंह अपने अंतिम दौर में थे और लोकदल पर हेमवती नंदन बहुगुणा अपनी पैठ बना रहे थे। देवीलाल भी एक्टिव थे। 1984 में श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए चुनावों में विपक्ष की हालत खस्ता हो गई और बड़े-बड़े धुरंधर चुनाव हार गए। हेमवती नन्दन बहुगुणा, चंद्रशेखर, अटल बिहारी वाजपेयी सभी चुनाव हार गए थे। उनकी दलित मजदूर किसान पार्टी में नए नेतृत्व की तलाश हो रही थी और अजीत सिंह को भी मनाया जा रहा था। मुलायम सिंह यादव ने राजनीति में कभी भी अपने से सीनियर नेताओ का साथ नहीं छोड़ा। वह बहुगुणा और चंद्रशेखर के बहुत नजदीक रहे।

आज के दौर मे 'कम्यूनिकेशन' को बेहद महत्वपूर्ण माना जाता है और मोदी के आने के बाद सबको लगता है कि जो लोग 'अच्छा' फेंकते है उनकी राजनीति में संभावनाएं अच्छी होती हैं लेकिन मुलायम सिंह यादव की लोकप्रियता ने यह साबित किया है कि राजनीति में जुमले वाली भाषा से अधिक आपकी व्यावहारिकता होती है। उनके पास कार्यकताओं की वह फौज थी जो उनके लिए आज भी लड़ने-भिड़ने को तैयार थी। कोई भी पार्टी बिना कार्यकताओं के सम्मान के नहीं चल सकती। मुलायम सिंह यादव उस पीढ़ी के नेता थे जिनका

घर असल में कार्यकर्ता का घर होता था और बहुत महत्वपूर्ण पदों पर होते हुए भी उनके पहनावे और बातचीत में गांव की मिट्टी की खुशबू झलकती थी।

इंदिरा गांधी की हत्या के बाद के माहौल ने विपक्ष की हालत खराब कर दी थी लेकिन इसी दौर में 1987 से राजीव सरकार मे वित्तमंत्री रहे श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पूंजीपतियों के प्रति जो अभियान चलाया वह जनता में एक संकेत भेज रहा था। कांग्रेस और राजीव गांधी इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और वी पी अंततः पार्टी से बाहर हुए और उन्होंने जनमोर्चा बनाया था जो बाद में जनता दल के रूप में बदल गया। मुलायम सिंह यादव और अन्य साथियों ने जनता दल में शामिल होने का निर्णय किया। 1989 के चुनावों में केंद्र में विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव मुख्यमंत्री बने। यह वह दौर था जब भाजपा ने राम मंदिर आंदोलन शुरू कर दिया लेकिन मुलायम सिंह यादव ने उसे सख्ती से दबाया। विश्वनाथ प्रताप और मुलायम सिंह यादव दोनों को ही मीडिया ने हिन्दू विरोधी करार दे दिया। नवंबर 1990 में जब चंद्रशेखर ने जनता दल से अलग होकर कांग्रेस के सहयोग से केंद्र में सरकार बनाई तो मुलायम सिंह यादव ने अपनी सरकार बचा ली क्योंकि कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश में उनके घटक दल को समर्थन दे दिया।

मुलायम सिंह यादव बहुत समझदार नेता थे, लेकिन अपने साथियों के लिए वह चार कदम आगे चल सकते थे। बहुत बार उनके इमोशन उनके राजनैतिक कौशल पर हावी हो गए जिसके कारण उनको राजनैतिक नुकसान भी हुए। 1990 में जब भाजपा ने राष्ट्रीय मोर्चा सरकार से नाता तोड़ा तो यह मण्डल रिपोर्ट के बाद का समय था और

संघ और भाजपा ने अयोध्या आंदोलन शुरू कर दिया। साफतौर पर यह पिछड़े वर्ग की भागीदारी के लिए बनाये गए मण्डल कमीशन की रिपोर्ट को स्वीकार कर लेने के फैसले के खिलाफ था। न ही चंद्रशेखर, और न देवीलाल इसके समर्थक थे, इसलिए उस समय विपक्षी खेमे में जाने से मुलायम सिंह यादव को नुकसान हुआ और साथ ही साथ मण्डल की लड़ाई कमजोर पड़ गई। 6 दिसंबर1992 में उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह की सरकार के नेतृत्व में बाबरी मस्जिद का ध्वंस हुआ। केंद्र की नरसिम्हाराव सरकार ने प्रदेश सरकार को बर्खास्त कर दिया। 1993 में चुनावों से पहले ही मुलायम सिंह यादव ने चंद्रशेखर के साथ अपना राजनैतिक नाता तोड़ लिया और समाजवादी पार्टी की स्थापना की। यहां उन्हें समझ आ गया कि अब उन्हें दलित-पिछड़े वर्गों की राजनीति करनी ही पड़ेगी। सामान्यतः मुलायम सिंह यादव ने अपने राजनीतिक जीवन में कभी भी तथाकथित बड़ी जातियों को अपमानित नहीं किया। उनके साथ और नजदीक के लोगों में अधिकांश सवर्ण, विशेषकर ब्राह्मण, थे, लेकिन बसपा के साथ उनका गठबंधन बेहद महत्वपूर्ण था। हालांकि वह बेमेल ही था क्योंकि जैसा कि मैंने कहा, समाजवादी पार्टी का ढांचा और विचार बसपा की तरह अम्बेडकरवादी नहीं था। यह एक हकीकत थी कि जब मुलायम सिंह यादव और मान्यवर कांशीराम एक साथ आये तो देश भर में दलित-पिछड़े वर्ग के लोगों में आशा की नई किरण जागृत हुई लेकिन दोनों पार्टियों में तनाव बढ़ाया जा रहा था जिसके फलस्वरूप दोनों का गठबंधन टूटा और इतनी बड़ी दरार पड़ गई कि उसे भरना मुश्किल हो गया। दोनों ही पार्टियों में ब्राह्मणों को अपनी ओर रखने की होड लग गई और दुर्भाग्यवश पिछड़ों के आरक्षण का प्रश्न 'विकास' के मॉडल में पीछे चला गया।

श्री मुलायम सिंह यादव इन्द्र कुमार गुजराल और देवगौड़ा की सरकार में केन्द्रीय रक्षा मंत्री थे और उनके कार्य की बहुत सराहना भी की गई। मुलायम सिंह यादव की राजनीति के बहुत से विश्लेषण होंगे और उनसे हम सभी अपने-अपने मतभेद रख सकते हैं। लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि वह दिल से काम करते थे और जमीन से जुड़े कार्यकर्ताओ से रिश्ते बनाकर रखते थे। नेताजी उस दौर में उभरे जब पहली पीढ़ी के नेता निकल रहे थे। वह दौर था सभी पक्ष-विपक्ष के नेताओ की पढ़ने और संवाद करने की आदत थी। अंबेडकर, नेहरू, लोहिया, जयप्रकाश, नरेंद्र देव आदि सभी बहुत पढ़ने वाले लोग थे। ये विचारक भी थे और जनता से लगातार संवाद करते थे। 1965 के दौर के बाद के नेताओ में समाजवाद, गांधीवाद, अम्बेडकरवाद और वामपंथी ध्रुव के लोग थे और अधिकांश के पास पढ़ने का ज्यादा समय नहीं था लेकिन वे जन सरोकारों से जुड़े थे और किसी भी अन्याय के खिलाफ खड़े होते थे। नेताजी मुलायम सिंह यादव से कोई भी कार्यकर्ता कभी भी मिल सकता। वैसे ही जैसे मान्यवर कांशीराम ने पूरे देश में साइकिल यात्रा कर अम्बेडकारी आंदोलन को एक नई दिशा दी, जमीन से जुड़े कार्यकताओं को सम्मान दिया। राजनीति में रिश्ते निभाना एक बेहद महत्वपूर्ण बात होती है।

आज के दौर मे 'कम्यूनिकेशन' को बेहद महत्वपूर्ण माना जाता है और मोदी के आने के बाद सबको लगता है कि जो लोग 'अच्छा' फेंकते है उनकी राजनीति में संभावनाएं अच्छी होती हैं लेकिन मुलायम सिंह यादव की लोकप्रियता ने यह साबित किया है कि राजनीति में जुमलेवाली भाषा से अधिक आपकी व्यावहारिकता होती है। उनके पास कार्यकताओं की वह फौज थी जो उनके लिए आज भी लड़ने-भिड़ने को तैयार थी। कोई भी पार्टी बिना कार्यकताओं के सम्मान के नहीं चल सकती। मुलायम सिंह यादव उस पीढ़ी के नेता थे जिनका घर असल में कार्यकर्ता का घर होता था और बहुत महत्वपूर्ण पदों पर होते हुए भी उनके पहनावे और बातचीत में गांव की मिट्टी की खुशबू झलकती थी। वे किसी भी कार्यकर्ता के शादी-विवाह, मुंडन, या परिवार में किसी के निधन पर हमेशा जाते। बहुत से लोगों को ये खराब लगता हो लेकिन राजनीतिक व्यक्ति के लिए विचारधारा अगर महत्वपूर्ण होती है तो शायद उससे अधिक उसकी व्यवहार कुशलता और जनसंपर्क महत्वपूर्ण होता है और नेताजी की सफलता ने यह साबित किया कि राजनीति में लोगों के साथ आपका व्यवहार आपके वाकपटुता से बेहद अधिक महत्वपूर्ण होता है। मुलायम सिंह यादव ने नए नेता बनाए, युवाओं को भागीदारी दी और कभी भी कोई जातिगत कटुता नहीं पाली। उन्होंने अपने रिश्तों को बेहद महत्व दिया। इसी काराण बहुत बार ऐसे रिश्ते उनके लिए बोझ भी बन गए, लेकिन उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। 1967 में अपना पहला चुनाव जीते नेताजी ने पहली बार मुख्यमंत्री का पद 1989 में हासिल किया जो यह दिखाता है कि उनकी प्रारम्भिक राजनीति कैसी थी। समाजवादी धारा की बुनियाद पर बनी अपनी राजनीति में उन्होंने सत्ता के साथ समझौता नहीं किया, हालांकि बाद में सत्ता की राजनीति के लिए उन्होंने व्यवहारिकता को अधिक महत्व दिया जिसके कारण उनपर विचारधारा से हटने के भी आरोप लगे। अखिलेश यादव को 2012 में मुख्यमंत्री के सवाल पर बहुत लोग सहमत नहीं थे लेकिन नेताजी ने यह देखा कि अखिलेश ने बेहद मेहनत की थी और समाजवादी रथ में पूरे प्रदेश का भ्रमण किया था। वह रिश्तों को नहीं तोड़ना चाहते थे इसलिए अपने परिवार में हर एक को जोड़ के रखते थे और कहीं न कहीं फिट कर देते थे। मैं यह कह सकता हूं ऐसे बहुत कम नेता हैं जो इस प्रकार से अपने कार्यकर्ताओ को ध्यान रखते हैं। आजकल तो पार्टियां और नेतृत्व आईएएस लोगों की सलाहों पर चलता है, लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि मुलायम सिंह यादव उन नेताओं में थे जो अपने साथियों की सलाह को ही प्रमुखता देते थे और समय-समय पर उन्हें उनकी गलतियों के लिए आगाह भी करते रहते थे।

मुलायम सिंह यादव एक पक्के राष्ट्रवादी थे और हिन्दी के विषय में अपने गुरु लोहिया के विचारों पर चलते थे। उन्होंने बहुत से साहित्यकारों का सम्मान भी किया हालांकि इनमें से अधिकांश का न तो समाजवादी पार्टी और न ही समाजवादी विचारधारा से कोई लेना-देना था, लेकिन यह बात है कि मुलायम सिंह यादव ने कोई जातिवादी राजनीति नहीं की। चाहे उन्होंने राजनीतिक में कई बार गलत निर्णय लिए हों लेकिन उन्होंने राजनीति में हमेशा से ही दोस्ती, मित्रता और कार्यकताओं को प्राथमिकता दी। हालांकि सामाजिक प्रश्नों पर वह उतने मुखर नहीं थे जैसे लालू यादव हैं लेकिन सांप्रदायिकता और किसानों, मजदूरों के सवालों को उन्होंने बेहद संजीदगी से लिया और उसके लिए वह जीवन भर लड़ते रहे। अपने जीवन में इतने बड़े पदों पर पहुँचने के बाद भी मुलायम सिंह यादव अपनी जमीन से जुड़े रहे। उनकी भाषा में सहज मिठास और अपनापन था। उनके निधन से देश की राजनीति में जमीन से जुड़े एक युग का अवसान हो गया है।

(लेखक जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता हैं।)

■

दयानंद पांडेय

मुलायम सिंह का हिन्दी प्रेम

अमूमन किसी की मृत्यु के बाद प्रशंसा के पद गाने की परंपरा सी है। मुलायम के निंदक भी आज सरल मन से उन की प्रशंसा में नतमस्तक हैं। मैं भी आज मुलायम की प्रशंसा में ही लिखना चाहता हूं। उन की भाषा और हिंदी प्रेम की कहानी बांचना चाहता हूं। बताना चाहता हूं कि मुलायम भारतीय भाषाओं के बहुत बड़े हामीदार थे। हिंदी और उर्दू दोनों ही के लिए मुलायम सिंह यादव बदनाम हैं। उत्तर प्रदेश में लोग उन्हें उर्दू के लिए बदनाम करते हैं और कहते हैं कि उर्दू को वह बहुत बढ़ावा देते थे। और जब वह दक्षिण भारत में जाते थे तो लोग उन्हें हिंदी के लिए बदनाम करते थे , कहते थे कि वह हिंदी को बहुत बढ़ावा देते हैं। सच यह है कि मुलायम सिंह यादव सभी भारतीय भाषाओं के हामीदार थे । उनको हिंदी भी उतनी प्रिय थी जितनी कि उर्दू, तमिल और तेलगू। या ऐसी ही और भारतीय भाषाएं। वह सभी भाषाओं को प्यार करते थे और उनको मान देते थे। भाषाओं को लेकर उन के बारे में बहुत सारी कथाएं हैं। एक कथा मुलायम सिंह खुद ही सुनाते थे तब जब वह पहली बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने थे। मुख्तसर में आप भी सुनिएः

एक समय उत्तर प्रदेश शासन में एक पी.डब्ल्यू.डी. विभाग के सचिव थे पाठक जी। बहुत ईमानदार। एक बार कोई ठेका था जिसे उन्होंने अस्वीकृत कर दिया। पर बाद में ठेकेदार जब उनसे मिला और अपने तर्क रखे तो पाठक जी ने उस के तर्कों को सुना और स्वीकार किया। और मान लिया कि वह ठेकेदार अपनी जगह बिलकुल सही है। पर उन्होंने अफसोस जताते हुए कहा कि अब तो फाइल पर वह आदेश लिख चुके हैं। ठेकेदार बाहर आया और उन के पी.ए. से मिला और बताया कि साहब मान तो गए हैं लेकिन दिक्कत यह है कि वह फाइल पर आदेश कर चुके हैं। सो अब कुछ हो नहीं सकता। पी.ए. होशियार था। उस ने ठेकेदार से कहा कि अगर साहब चाहें तो अभी भी बात बन सकती है। ठेकेदार ने पूछा वह कैसे? तो पी.ए. ने कहा कि साहब से कहिए कि वह हमसे पूछ लें हम बता देंगे। और उस ईमानदार पी.डब्ल्यू.डी. के ईमानदार सचिव पाठक जी को पी.ए. ने सचमुच समझा दिया और ठेकेदार का काम हो गया। पी॰ए॰ ने पाठक जी को समझाया कि जो फाइल पर उन्होंने अंगरेजी में जो टिप्पणी लिखी है नाट एक्सेप्टेड बस उसी में एक अक्षर और बढ़ानी है। नाट के एन.ओ.टी. में आगे ई बढ़ा देना है। तो नाट एक्सेप्टेड, नोट एक्सेप्टेड हो जाएगा। फिर उसी स्याही वाली कलम खोजी गई और पाठक जी ने नाट को नोट में बदल दिया। नाट एक्सेप्टेड, नोट एक्सेप्टेड हो गया। तो मुलायम सिंह यादव इस वाकये को याद करके बताते थे कि देखिए अंगरेजी में भ्रष्टाचार की कितनी गुंजाइश है। अगर यही बात फाइल पर हिंदी में लिखी गई होती अस्वीकृत तो उसे काट कर स्वीकृत नहीं किया जा सकता था। यह ठीक था कि पाठक जी एक ईमानदार अधिकारी थे पर अगर यही तरकीब बेईमान अधिकारी अपनाएं तो बेड़ा गर्क हो जाएगा। इसी लिए मुलायम सिंह यादव ने उत्तर प्रदेश के सचिवालय से अंग्रेजी का सारा काम-काज खतम करवा दिया। कहा जाता है कि उस वक्त उन्होंने अंग्रेजी के टाइपराइटर उठवा कर फेंकवा दिए थे। इसी तरह भारत के कुछ हिस्सों में भाषा नीति के सवाल को लेकर अलगाव की बहुत कोशिशें की जाती रही हैं। एक आम धारणा है कि दक्षिण के लोग हिंदी के खिलाफ हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया पर भी वहां पत्थर फेंकने की बात सामने आई है। एक समय चौधरी देवीलाल की सभा में भी गड़बड़ी की गई।और भी बहुत सारी हिंदी विरोध की घटनाएं हैं। एक बार मुलायम सिंह यादव भी तमिलनाडु गए और करुणानिधि जी से भेट का समय मांगा। करुणानिधि ने मिलने से साफ मना कर दिया और कहला दिया कि मेरे पास समय नहीं है। उन्होंने इसलिए मना किया कि लोग मुलायम सिंह यादव से मिलने के मायने निकालेंगे कि वह अंग्रेजी के खिलाफ हैं। लेकिन मुलायम सिंह यादव जब मदुरई हवाई अड्डे पर उतरे तो वहां पत्रकारों ने भाषा नीति के सवाल को ले अंग्रेजी कर बहुत से सवाल पूछे। पत्रकारों ने मुलायम से पूछा कि क्या आप यहां हिंदी थोपने आए हैं?

मुलायम सिंह यादव ने कहा कि हम तमिल थोपने आये हैं। पत्रकारों ने इसकी रिर्पोटिंग कर दी। अगले दिन सुबह टाइम्स ऑफ इण्डिया और इण्डियन एक्सप्रेस दोनों अखबारों ने, बल्कि मदुरई सहित सारे हिंदुस्तान में एक ही हेड लाइन थी कि मुलायम सिंह तमिल थोपने आये हैं। नतीजा सामने था। मुलायम सिंह यादव को करुणानिधि जी का टेलीफोन सुबह ही आ गया कि कल 9 बजे हमारे घर पर नाश्ता करें। इस के बाद मुलायम सिंह यादव दक्षिण में जहां-जहां बोले विशेष कर जहां तमिल भाषा के महत्व को लेकर हिंदी का सबो ज्यादा विरोध था, वहां के बुद्धिजीवियों ने मुलायम का खूबस्वागत किया और उनके सम्मान में वहां एक कार्यक्रम भी रखा। जिस में साहित्यकार, कवि, वकील और विद्वानों ने भाग लिया।

मुलायम ने वहां कहा कि उत्तर भारत में शेक्सपियर को सब जानते हैं, लेकिन आप के स्वामी सुब्रह्मण्यम कौन हैं, उन को कोई नहीं जानता। क्या यह हिंदी का कुसूर है या अंग्रेजी की गलती या फिर भाषा के नाम पर संकीर्णता का दुष्परिणाम? राष्ट्रभाषा के मामले में इस देश में वही हो रहा है, जो एकता और अखण्डता के मामले में हुआ है। इतना महान देश क्षेत्रावाद, जातिवाद और सांप्रदायिकता का शिकार बना हुआ है। आजादी की लड़ाई में, जब तक हिंदुस्तानी एकजुट नहीं हुए थे, अंगरेज इस मुल्क से नहीं गए। अंग्रेजी भी ऐसे ही जाएगी। सभी भाषाओं का सम्मान हो, पर सबसे ज्यादा देश की भाषा को महत्व मिले। उस सम्मेलन में बड़े-बड़े साहित्यकार और बड़े-बड़े कवि थे, सब के सब समझदार, संवेदनशील और भावुक थे, उनमें से बहुतों की आंखों में आंसू आ गए। फिर मुलायम सिंह यादव का जब रदस्त स्वागत हुआ। उस सभा में न तो पत्थर चला और न ही मुलायम सिंह यादव का विरोध हुआ।

करुणानिधि से भी मुलायम सिंह यादव ने साफ कहा कि आप हमें जो भी पत्र लिखिए अंग्रेजी में मत लिखिए। करुणानिधि ने तब भड़क कर कहा तो क्या हिंदी में लिखें? मुलायम ने कहा कि नहीं तमिल में लिखिए

और हम आप को तमिल में ही जवाब देंगे। करुणानिधि तब गदगद हो गए। असल में जो अलगाव पैदा करने वाले लोग हैं, वह लोग अंग्रेजी के समर्थक हैं। हमारे यहां भी भाषा के मामले में बड़े-बड़े नेता जिन पर विश्वास रखते थे, उनमें अंग्रेजी परस्तों की कमी नहीं थी। मुलायम सिंह यादव की प्रेरणा से एक बार अंग्रेजी हटाओ अभियान में चार मुख्यमंत्री शामिल हुए थे। उसकी रिपोर्ट करते हुए अखबारों ने लिखा था कि भले ही अंग्रेजी जीवंत है, मगर हमारे देश की संसद बहुभाषी बने, हमारा सुप्रीम कोर्ट बहुभाषी बने, सरकारी नौकरियों से अंग्रेजी की अनिवार्यता खत्म हो, सरकारी काम-काज सिर्फ. भारतीय भाषाओं में हो। दरअसल समाजवादियों की यही नीति भी है। मुलायम सिंह यादव दरअसल अंग्रेजी के विरोधी नहीं थे। वह साफ मानते थे कि अगर कोई विदेशी भाषा मिटाने की बात कहेगा तो वह मूर्ख होगा, अज्ञानी होगा, मुलायम सिंह जैसा नहीं होगा। मुलायम सिंह इस विचार के थे कि हम किसी विदेशी भाषा को मिटाना नहीं चाहते। कोई विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, करे, लेकिन अंग्रेजी की अनिवार्यता सार्वजनिक जीवन से, सरकारी काम-काज से हटे, अपनी भारतीय भाषाओं में ही काम हो। मुलायम सिंह मानते थे कि देश की मातृभाषा हिंदी है उसी का बोलबाला हो। वर्ष 2003 में जब मुलायम मुख्यमंत्री थे तो एक अदभुत आदेश उन्होंने दिया था। हिंदी दिवस के मौके पर। और कहा था कि रातो-रात 24 घंटों में सरकारी कार्यालयों से अंग्रेजी हट जाए। जो अंग्रेजी में पुलिस के बैरियर लगे रहते हैं वह भी हट जाएं। सभी सरकारी कार्यालयों में जितनी गाड़ियां हैं चाहे किसी की हों, उन की ही क्यों न हो, उन की नंबर प्लेटों पर से पद-नाम इत्यादि अंग्रेजी में खत्म हो। मुलायम ने ही प्रदेश में हिंदी और उर्दू का एक साथ चलन शुरू कराया। क्योंकि वह मानते थे कि हिंदी है बड़ी बहन और उर्दू छोटी बहन। इसलिए छोटी बहन का आदर करना पड़ेगा।

मुलायम सिंह यादव दरअसल हिंदी के ही समर्थक नहीं थे , वह सभी भारतीय भाषाओं के समर्थक थे । उनका सोचना यह था कि किसी भी विदेशी भाषा का देश पर एकाधिकार न हो। उनकी राय थी कि देश में विदेशी भाषा में काम न हो। मुलायम कहते थे कि जब अकेली अंग्रेजी ने सारी भारतीय भाषाओं का हक मार रखा है तो विदेशी कंपनियां आने के बाद हमारी स्वदेशी कंपनियों की क्या हालत होगी। मुलायम कहते थे कि अगर अंग्रेजी रहेगी, विदेशी भाषा रहेगी तो विदेशी कंपनियों को भी कोई रोक नहीं सकता। भारत के परंपरागत उद्योग धंधों को मिटने से कोई रोक नहीं सकेगा तब। मुलायम की राय थी कि भाषा का रिश्ता केवल हमारे आर्थिक जीवन से ही नहीं, भाषा का रिश्ता हमारे देश की नींव से जुड़ा हुआ है। हमारे देश के सम्मान से जुड़ा हुआ है।

आप को याद होगा कि अमरीका से क्लिंटन भारत आए थे तो प्रधान मंत्री ने अपना भाषण अंग्रेजी में देना चाहा था। मुलायम ने इस का विरोध जताया था। क्योंकि उन्हें याद था कि एक बार रूसी राष्ट्रपति के आने पर हमारे प्रधान मंत्री अंग्रेजी में बोले थे तब रूसी राष्ट्रपति ने कहा था कि मैं तो समझता था कि यहां तो हिंदी में भाषण दिया जाएगा या संस्कृत में भाषण दिया जाएगा पर यहां तो विदेशी भाषा में भाषण दिया जा रहा है। तो जब मुलायम ने क्लिंटन के समय यह मामला उठाया कि प्रधान मंत्री का भाषण विदेशी भाषा में नहीं होनेदेंगे तो सरकार दहशत में आ गई। रात के 11 बजे मीटिंग हुई। प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को समझाया गया कि मुलायम सिंह हो सकता है कि केवल भाषण का ही बहिष्कार न करें, महिला बिल की तरह कहीं इस के कागज न छीन लें। तब कहीं जा कर प्रधानमंत्री हिंदी में भाषण देने को तैयार हुए। करुणानिधि ने विरोध किया और कहा कि मुलायम सिंह के दबाव में प्रधानमंत्री ने ऐसा किया है। मुलायम ने तुरंत करुणानिधि को चिट्ठी लिखी और कहा कि मुझे खुशी होती अगर प्रधानमंत्री तमिल भाषा में बोलते। मुलायम की करुणानिधि को लिखी यह चिट्ठी देश के अखबारों में छपी। करुणानिधि ने माना कि उन्हों ने वह बयान दे कर गलती की। उन्होंने कहा कि मैं नहीं समझता था कि मुलायम सिंह ऐसा जवाब दे देंगे। इस के बाद दक्षिण भारत के, तमिलनाडु के जितने भी सांसद आए मुलायम को सीने से लगा लेते।

मुलायम हिंदी प्रेमियों को इससे सावधान होने की हिदायत देते थे और कहते हैं कि हिंदी प्रेमियों को सावधान होना पड़ेगा। वह कहते थे कि इस गलतफहमी में न रहें कि हिंदी हमारी चूंकि मातृभाषा है इसलिए हमारी जिंदगियों के साथ ही पनपेंगी, यह गलत धारणा है। मुलायम मानते थे कि अंग्रेजी को मिटाया न जाए लेकिन सरकारी काम-काज से हटाया जाए। अदालतों से हटाया जाए। यह कोई मुश्किल काम नहीं है। मुलायम कहते थे कि जब तक संसद और उच्चतम न्यायालय में अंग्रेजी चलेगी, तब तक देश में हिंदी नहीं आएगी। अगर इस काम में कोई बाधक है तो संसद है और उच्चतम न्यायालय है। मुलायम कहते थे कि आप अगर अकेले हिंदी की तरक्की चाहते हैं तो खतरा और भी ज्यादा बड़ा है। इसलिए बड़ी सोच से काम लेना चाहिए। जिस तरह सिर्फ. हिंदुओं की उन्नति से हिंदुस्तान तरक्की नहीं करेगा, उसी तरह अकेली हिंदी का देश में पनपना नामुमकिन है। इसी लिए मुलायम हमेशा भारतीय भाषाओं के हक की बात करते थे और कहते थे कि जब भारतीय भाषाओं की तरक्की होगी तो हिंदी अपने आप आ जाएगी। फिर हिंदी को कोई रोक नहीं सकता है।

यह जानना भी दिलचस्प है कि मुलायम जब रक्षा मंत्री थे तो उनके पास 85 प्रतिशत पत्रावलियां हिंदी में आती थीं। उस समय ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जो बाद में राष्ट्रपति हुए, रक्षा मंत्रालय में सलाहकार थे। तो मुलायम सिंह ने एक दिन उनसे पूछा कि आप जरा भी हिंदी नहीं जानते? तो कलाम साहब ने उन्हें बताया, 'जी, नहीं जानते।' तो मुलायम ने उन से कहा कि थोड़ा-बहुत तो आप को सीखनी ही चाहिए। इस पर कलाम साहब ने कहा कि, 'एस आई विल स्पीक इन हिंदी विद इन थ्री मंथ्स!' फिर उन्हों ने तीन महीने के भीतर न सिर्फ. काम चलाने लायक हिंदी सीख ली बल्कि हिंदी में दस्तखत भी करने लगे। इतना ही नहीं, एक बार लोकसभा में मुलायम ने इंद्रजीत गुप्त से कहा कि अगर आप अंग्रेजी में बोलेंगे तो हम आप को नहीं सुनेंगे। आप के साथ नहीं बैठेंगे। फिर उन्हों ने हिंदी में बोलना शुरू कर दिया। लेकिन दूसरे दिन उन्हों ने कहा कि मुलायम सिंह आप ने हिंदी में बुलवा कर पार्टी में हम पर डांट पड़वा दी है कि क्या मुलायम सिंह के कहने पर आप हिंदी में भाषण देंगे? मुलायम मानते थे कि देश में हिंदी के लिए यह प्रवृत्ति बहुत बड़ा खतरा है।

27 नवंबर, 2003 को लखनऊ में तत्कालीन प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने डॉ. हरिवंश राय बच्चन के नाम पर डाक टिकट जारी किया था तो इस मौके पर मुलायम ने कहा यदि मधुशाला का अंगरेजी में प्रभावी अनुवाद हो, तो अंग्रेजी जानने वालों को भी पता चल जाएगा कि बच्चन जी कीट्स और शैली से बहुत आगे थे। उन्होंने कहा कि किसी रचनाकार का सही सम्मान यही हो सकता है कि उस की कृतियों को पूरे विश्व समाज तक पहुंचाया जाए। उन्होंने घोषणा भी की कि मधुशाला का अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओं में भी कराने का पूरा प्रयास करेंगे।

बहुत कम लोग जानते हैं कि मुलायम सिंह यादव कविता और कवि सम्मेलन के बहुत बड़े रसिया थे एक समय था कि वह रात-रात भर कवि सम्मेलनों में एकदम पीछे बैठ कर कवियों और शायरों को सुनते थे और मूंगफली के सहारे सारी रात जागते थे। कवि सम्मेलनों में जाने और कवि सम्मेलन कराने का उन्हें बहुत शौक था। इसीलिए वह कवियों का सम्मान भी बहुत करते थे। वह मानते थे कि कवि और लेखक भावना प्रधान होते हैं। तुलसीदास से लेकर महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन और गोपाल दास नीरज जो कि इटावा जिले के ही थे , सभी को बड़े ही चाव से पढ़ते व सुनते थे। वह कहते थे कि कवि की कोई जाति नहीं होती। समय-समय पर जब किन्हीं परिस्थितियों के कारण देश और समाज में अंधकार हो जाता है, तो वे प्रकाश देते हैं। आजादी की लड़ाई इसका प्रमाण है। मुलायम कहते थे कि आजादी की लड़ाई के जमाने के जो गीत थे, नज्में थीं, जो कविताएं थीं, उन्होंने क्रांति की ज्वाला और स्वाधीनता संघर्ष की लौ को जलाये रखने में इतनी मदद की, वह आज देश का इतिहास बन चुका है। कवियों ने सिर्फ. जनजागरण का काम ही नहीं किया, उन्होंने इन संघर्षों में हिस्सा भी लिया तथा कुर्बानियां भी दीं। बहुत से कवि गांधी जी के साथ आजादी की लड़ाई में कूदे थे, वे भी महान स्वतंत्राता सेनानी थे।

इटावा के एक कवि सम्मेलन में मुलायम ने कवियों से आह्वान करते हुए कहा था कि आज हम आप से एक ही बात कहना चाहते हैं कि आजादी की लड़ाई में जिस तरह कवियों ने देश को जगाने का काम किया था, उसी तरह से इसे फिर जगाएं। हिंदुस्तान को हर तरह के नुकसान से बचाने के लिए, देशवासियों को उनकी जिम्मेदारी तथा भूमिका का अहसास दिलाइए। हम जानते हैं कि कविता भी दो तरह की होती है। एक वह जिसमें दर्शन या रहस्य होता है, जिसे पढ़े-लिखे लोग ही समझ सकते हैं। दूसरी जिस में होती हैं भावनाएं, प्रेरणा, विचार और तुलना। आम जनता को इसीलिए लोक भाषा, लोक गीत और लोक संस्कृति से जुड़ी कविताएं पसंद आती हैं। यह भावना प्रधान और प्रेरक कविताएं श्रोताओं के कानों से होकर सीधे उनकी आत्मा में उतर जाती हैं। अनपढ़ शहरी और देहाती भी आप की ऐसी रचनाओं तथा उन में छिपी भावनाओं को समझ लेता है। अगर हिंदुस्तान की सभ्यता और संस्कृति को कोई बचा सकता है, तो हमारे लोक कवि तथा गीतकार ही बचा सकते हैं। लोक गीतों में जन भावना को छूने की जो ताकत होती है, उसका आकलन असंभव है।

मुलायम सिंह यादव न सिर्फ भाषाई स्तर पर बल्कि वैचारिक स्तर पर भी भाषा, साहित्य और संस्कृति का बेहद सम्मान करते थे। इसके एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। जैसे डॉ. हरिवंश राय बच्चन जब बीमार थे तो उन्हें यश भारती से सम्मानित करने वह मुंबई उन के घर गए और उन्हें सम्मानित किया। हिंदी कवि सम्मेलनों में एक बहुत मशहूर कवि हुए हैं बृजेंद्र अवस्थी। कवि सम्मेलनों का सफल संचालन करने के लिए वह मशहूर थे। आशु कविता के लिए वे जाने जाते थे। अपने अंतिम समय में जब वह गंभीर रूप से बीमार पड़े तो उन के पास किसी ने सूचना दी कि बृजेंद्र अवस्थी बहुत बीमार हैं। उनके इलाज में मदद की जरूरत है। मुलायम सिंह ने तुरंत उनका सरकारी खर्चे पर इलाज करने के आदेश दिए और उन्हें आर्थिक मदद भी भेजी। जब वह यह सब कर रहे थे तभी किसी ने उन्हें आगाह किया कि अरे वह तो भाजपाई कवि है। मुलायम ने उस व्यक्ति को फौरन डांटा और कहा कि चुप रहो! कोई कवि भाजपाई या सपाई नहीं होता है। कवि कवि होता है। मशहूर शायर अदम गोंडवी बहुत बीमार पड़े और गोण्डा से चल

कर लखनऊ के पी.जी.आई. में इलाज कराने के लिए आए। अखबारों में खबर छपी कि अदम गोंडवी को पी.जी.आई. में भर्ती नहीं किया जा रहा है और उनके इलाज में आर्थिक दिक्कतें बहुत हैं। मुलायम सिंह यादव तब सरकार में नहीं थे। लेकिन यह खबर मिलते ही वह फौरन पी.जी.आई. पहुंचे और उन्हें भर्ती करवाया, उनकी आर्थिक मदद की और उनके परिजनों को आश्वासन दिया कि उनके इलाज में कोई कमी नहीं आने दी जाएगी। हुआ भी यही। अलग बात है कि अदम गोंडवी को बचाया नहीं जा सका। जिस दिन उनका निधन हुआ उस दिन बहुजन समाज पार्टी की रैली थी और सड़कें भरी हुई थीं। अदम का सुबह पांच बजे निधन हुआ। और सुबह छः बजे ही मुलायम पी.जी.आई. पहुंच गए। उनके परिवारीजनों को ढांढस बंधवाया और उनके पार्थिव शरीर को गोण्डा ले जाने की व्यवस्था भी कराई। यह मुलायम सिंह यादव ही कर सकते हैं।

एक बार मेरे साथ भी वह ऐसा कर चुके हैं। 18 फरवरी, 1998 की बात है। मुलायम सिंह यादव संभल से लोकसभा चुनाव लड़ रहे थे। मैं संभल कवरेज में जा रहा था। सीतापुर से पहले खैराबाद में हमारी अंबेसडर एक ट्रक से लड़ गई। हमारे साथ बैठे हिंदुस्तान के पत्रकार और हमारे साथी जय प्रकाश शाही और ड्राइवर ऐट स्पाट चल बसे। मुझे और आज के गोपेश पांडेय को गहरी चोट लगी। लेकिन बच गए। मेरा जबड़ा हाथ और सारी पसलियां टूट गई थीं। लखनऊ पी.जी.आई. लाए गए हम लोग। हमें देखने के लिए उसी शाम सबसे पहले मुलायम सिंह यादव पहुंचे राजबब्बर के साथ। न सिर्फ. पहुंचे बल्कि इलाज का सारा प्रबंध किया। परिवारीजनों को ढाढस बंधाया। बाद के दिनों भी वह हालचाल नियमित लेते रहे। एक महीने बाद जब अस्पताल से घर लौटा तो पता चला कि दाई आंख भी डैमेज है। रेटिना पर चोट है। मन में आया कि इससे अच्छा होता कि मर गया होता। बिना आंख के जी कर क्या करुंगा मैं। मुलायम सिंह तब दिल्ली में थे। उन्हें जब यह पता चला तो मुझे फोन किया और कहा कि घबराइएगा नहीं। दुनिया में जहां भी आप की आंख ठीक हो सकती हैं, मैं कराऊंगा। मैं जैसे जी गया था। बाद में वह एक बार मिले तो कहने लगे कि आप को जिंदगी में कभी

कोई दिक्कत नहीं होगी। क्योंकि आप की पत्नी बहुत बहादुर हैं। मुलायम सिंह यादव सरकार में हों या बाहर, सामाजिक सरोकार, साहित्य और संस्कृति हमेशा उन की प्राथमिकता में होते थे। इसीलिए मुलायम सिंह यादव मुलायम सिंह यादव थे। और मुलायम के मायने हैं।

मुलायम सिंह यादव असल में हिंदी को हमेशा स्वाभिमान का विषय मानते आए थे। इसीलिए उन्होंने उत्तर प्रदेश से लगायत तमिलनाडु तक में हिंदी के झंडे गाड़े। उन्हों ने न सिर्फ.राजनीतिक रूप से प्रतिष्ठित किया बल्कि उत्तर प्रदेश में बतौर मुख्यमंत्री प्रशासनिक तौर पर भी हिंदी को प्रतिष्ठित किया। क्योंकि मुलायम का मानना था कि विकास प्रक्रिया में उपेक्षित, साधनहीन और निर्बल वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सरकारी कामकाज का जन-भाषा में होना बहुत जरूरी है। वह इस बात को भी नहीं मानते थे कि विशेषज्ञता वाले कई विषयों में उच्च अध्ययन के लिए हिंदी सक्षम नहीं है। मुलायम मानते थे कि चीन, जापान, रूस आदि देश अगर अपनी भाषा के बल पर इतनी तरक्की कर सकते हैं तो भारत क्यों नहीं कर सकता? इसीलिए उन्हों ने 1990 में बतौर मुख्यमंत्री प्रदेश लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अंगरेजी के प्रश्नपत्र की अनिवार्यता समाप्त कर दी। इसके साथ ही हिंदी के प्रश्नपत्र में प्रश्नों के अंग्रेजी अनुवाद की अनिवार्यता भी समाप्त कर दी। बाद में यही फैसला उन्हों ने पी.सी.एस. की होने वाली परीक्षाओं में भी लागू कर दिया। नतीजा सामने था, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश आदि हिंदी भाषी प्रदेशों की सरकारों ने भी मुलायम से प्रेरणा ले कर अपना कामकाज हिंदी में करने का निर्णय ले लिया। हिंदी जैसे जाग गई। यह बहुत बड़ी घटना थी। यहां यह बताना जरूरी है कि देश में आजादी के समय से ही सारा कामकाज अंगरेजी में होता था सो एकदम से हिंदी लागू नहीं की जा सकती थी। संविधान में हिंदी में सरकारी कामकाज शुरू करने की तैयारी के लिए 15 साल का समय तय किया गया था। संविधान के अनुच्छेद-343 में यह प्राविधान किया गया। लेकिन वर्षों बीत गया किसी ने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। और अंग्रेजी हमारी छाती पर मूंग दलती रही। ध्यान आया तो सिर्फ.मुलायम सिंह यादव को जब वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हुए। मुलायम सिंह के खिलाफ अंग्रेजी के पिट्ठुओं ने अहिंदी भाषी लोगों को भड़काना शुरू किया और साथ ही बताना शुरू किया कि सरकारी काम-काज को हिंदी में करने के फैसले से और हिंदी में शिक्षा देने से उत्तर प्रदेश पिछड़ गया है। पूरे देश में यह प्रचारित किया गया कि उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी को समाप्त कर दिया गया है। अंग्रेजी स्कूल बंद कर दिए गए हैं। कुछ अंग्रेजी लेखकों और अखबारों ने तो यहां तक लिखा कि मुलायम ने उत्तर प्रदेश के छात्रों का भविष्य अंधकारमय बना दिया है। इतना ही नहीं आरोप यह भी लगाया गया कि यह दक्षिण भारतीय राज्यों में हिंदी थोपने का षड्यंत्र है। तब जब कि सच यह है कि मुलायम सिंह यादव हिंदी के अंध समर्थक नहीं थे। वह तो भारतीय भाषाओं के चलन के कट्टर समर्थक थे। मुलायम मानते थे कि अंग्रेजी को मातृभाषा स्वीकार करने वालों की संख्या बहुत सीमित है और हिंदी बोलने वालों की संख्या करोड़ो में है। फिर भी हिंदी को राजभाषा इसलिए नहीं बनाया गया क्योंकि इसके बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक है। बल्कि इस लिए कि महात्मा गांधी इसे क्रांति की भाषा मानते थे।

हिंदी प्रेम या हिंदी प्रचार खादी की तरह एक अनिवार्य तत्व बन गया था। यही वह समय था कि जब चक्रवर्ती राज गोपालाचारी या डॉ.सुनीति कुमार जैसे राष्ट्रीय नेताओं जिन्होंने स्वयं हिंदी सीख कर हजारों लोगों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। लेकिन दुर्भाग्य से यही लोग स्वतंत्रता के बाद अंगरेजी समर्थक बन गए। मुलायम मानते थे कि अंग्रेजी का प्रभुत्व समाप्त होने के बाद ही हमारा बौद्धिक और आर्थिक शोषण समाप्त होगा। हमारा अपना स्वाभिमान तभी जागृत होगा। लोकतंत्र में जनता की भागीदारी तथा प्रशासन पर नियंत्राण का काम भी मातृ भाषाओं के माध्यम से ही किया जा सकता है। मुलायम सिंह यादव ने डॉ. राममनोहर लोहिया ट्रस्ट बना कर हिंदी के पक्ष में जनमत बनाने का काम शुरू भी किया।

मुलायम सिंह यादव के साथ मैं ने बहुत सी यात्राएं की हैं। सड़क मार्ग से भी, हवाई मार्ग से भी। अनेक इंटरव्यू किए हैं। उन के साथ की बहुत सी खट्टी-मीठी यादें हैं। सहमति-असहमति के अनेक किस्से हैं। जब वह रक्षा मंत्री थे तो लखनऊ में सेना का एक कार्यक्रम था। कार्यक्रम खत्म होने के बाद जलपान हुआ। जलपान में ही वह मेरी बांह पकड़ कर कहने लगे, मेरे साथ चलिए। उन दिनों मैं स्कूटर चलाता था। बताया उन्हें कि स्कूटर से आया हूं। तो वह बोले, स्कूटर आ जाएगी। आप अभी चलिए। कुछ बात करनी है। स्कूटर छोड़ कर चला आया। वह सेना को ले कर इंटरव्यू देना चाहते थे। उसी दिन दिल्ली जाना था उन्हें। फ्लाइट थी। स्पेशल इंटरव्यू वह मुझ से ही लिखवाना चाहते थे। मेरी भाषा पर मोहित रहते थे। इंटरव्यू में बहुत सी बातें हुई। पर खास बात यह थी कि मुलायम सेना की नौकरी को आई ए एस, आई पी एस की तरह आकर्षक सेवा बनाने की बात करते रहे थे। इन से भी अधिक वेतन और सुविधाएं देना चाहते थे।

एक दिन उन का अचानक फोन आया। हालचाल पूछा और कहने लगे, ' सुना है , आप ने मुझ पर कोई किताब लिखी है? ' मैं ने बताया कि, ' हां लिखी तो है।'

' कैसे मिलेगी मुझे? ' ' आप जब कहें, आ कर दे दूंगा। या भिजवा देता हूं। ' ' आप ऐसे तो कभी आते नहीं हैं। किताब के बहाने आइए। ' जो समय तय हुआ, मैं पहुंचा। बहुत दिनों बाद गया था। उन के घर का सब कुछ बदल गया था। सुरक्षा कर्मियों ने रोका तो बताया कि बुलाया है मुलायम सिंह जी ने। नाम बताने पर सुरक्षाकर्मी उठ कर खड़ा हो गया। फाटक खोल दिया। लेकिन दूसरे सुरक्षाकर्मी ने मोबाइल और , चाभी जमा करने को कहा। मुझे बहुत बुरा लगा। यह क्या तरीका है ? कहते हुए वापस होने लगा तो अचानक एक सुरक्षाकर्मी मेरे पास आया और सामने एक व्यक्ति को दिखाते हुए बोला , ' सर उन्हें जानते हैं ?' ' हां! ' मैं ने कहा , 'कांग्रेस नेता प्रमोद तिवारी हैं। ' ' उन्हें देखिए। ' देखा कि प्रमोद तिवारी भी अपना मोबाइल जमा कर रहे थे। तो मैं ने मोबाइल कार में रख कर चाभी जमा कर दी। भीतर गया। मुलायम मुझे देखते ही खिल गए। उठ कर गले मिले। अपने बगल में बिठाया। किताब के साथ फोटो खिंचवाई। मिठाई खिलाई। मैं वापस आ गया। फिर कभी नहीं गया मुलायम से मिलने। यही मेरी उन से आखिरी मुलाकात थी। फोन पर जरुर बात हुई। असल में उन के घर की जांच बहुत बुरी लगी थी। एक समय था कि विक्रमादित्य मार्ग के इसी घर को वह घूम-घूम कर दिखाते रहे थे। एक समय था कि बिना किसी जांच या रोकटोक के उन के घर या दफ़्तर में घुस जाता था। मुलायम सिंह यादव अपनी अच्छाई-बुराई के साथ आप हमेशा याद आएंगे।

(सरोकारनामा पर प्रकाशित संस्मरण का सम्पादित अंश)

■

बी. सिवरामन

भारत में रोजगार संकट के विभिन्न पहलू

संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के मुताबिक अगले साल भारत जनसंख्या के मामले में चीन से आगे निकल जाएगा और दुनिया में सबसे ज्यादा आबादी वाला देश बन जाएगा। विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में भारतीय अर्थव्यवस्था सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था है। साथ ही प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में भारत में बेरोजगार लोगों की संख्या भी सबसे अधिक है। केवल यही नहीं है कि भारत में रोजगार वृद्धि जनसंख्या वृद्धि के साथ तालमेल नहीं बिठा पा रही है, यह अर्थव्यवस्था में भी विकास दर से मेल नहीं खा रही है। यहां तक कि 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था की 8 से अधिक प्रतिशत की चरम वृद्धि वाली अवधि में, और नई सहस्राब्दी के पहले दशक में, विकास एक 'रोजगारविहीन विकास' साबित हुआ है।

यह सर्वविदित है कि महामारी ने लाखों भारतीयों को बेरोजगार कर दिया। महामारी से पहले के स्तर पर पहुंचने की बात तो दूर, विकास दर लगातार गिर रही है और अर्थव्यवस्था मंदी की ओर अग्रसर है। यह भारत में पहले से ही गंभीर बने रोजगार संकट को बढ़ा रहा है।

भारत के दीर्घकालिक रोजगार संकट की जड़ पर्याप्त संख्या में रोजगार पैदा करने में भारतीय अर्थव्यवस्था की असमर्थता है, यहां तक कि विस्तारित होते कार्यबल के लिए रोजगार पैदा करना तो दूर, बेरोजगारों के बैकलॉग को खत्म करने की स्थिति तक नहीं बनी। कार्यबल में नए जनसांख्यिकीय (Demographic) वृद्धि से रोजगार सृजन लगातार पिछड़ रहा है। बैलूनिंग बेरोजगारी (Ballooning unemployment) इसी संकट का परिणाम है।

भारत में नौकरियों का संकट कितना गंभीर है?

भारत में रोजगार संकट कितना गंभीर है? इस पर एक समग्र विचार प्राप्त करने के लिए, आइए हम रोजगार और बेरोजगारी पर विभिन्न डेटा स्रोतों से डेटा का सारांश तैयार करें। डेटा स्रोतों और श्रेणियों की परिभाषा के बारे में पहले कुछ शब्द।

परिभाषाओं के अनुसार, श्रम शक्ति (labour force) कामकाजी उम्र की आबादी में उन लोगों की संख्या का प्रतिनिधित्व करती है जो वास्तव में काम कर रहे हैं और साथ ही जो काम करने के इच्छुक हैं लेकिन रोजगार नहीं पा रहे हैं। हालांकि, कार्यबल (workforce) एक ऐसी श्रेणी है जो केवल उन लोगों का प्रतिनिधित्व करती है जो वास्तव में काम कर रहे हैं। इस प्रकार, कार्यबल में उन लोगों की गिनती नहीं है जो काम करने के इच्छुक हैं लेकिन काम नहीं पा रहे हैं। यानि, बेरोजगार व्यक्तियों की कुल संख्या श्रम बल और कार्यबल के बीच का अंतर होता है।

भारत में रोजगार और बेरोजगारी के आंकड़ों के दो प्रमुख स्रोत हैं। एक राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) सर्वेक्षण है जो सरकार के राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) द्वारा किया जाता है। दूसरा एक निजी थिंक टैंक सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) द्वारा हर महीने किए जाने वाले बड़े पतिदर्श सर्वेक्षण हैं। पहले, NSO पांच साल में एक बार रोजगार-बेरोजगारी सर्वेक्षण करता था जिसे एनएसएसओ राउंड कहा जाता था। लेकिन, अधिक बारंबारता वाले डेटा-अंतराल के लिए डेटा हासिल करने हेतु, अप्रैल 2017 से, NSO ने शहरी क्षेत्रों के लिए हर तिमाही (यानी, तीन महीने में एक बार) के लिए आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS), और संयुक्त रूप से शहरी और ग्रामीण क्षेत्र दोनों के लिए वार्षिक सर्वेक्षण करना शुरू कर दिया है, जो पूरे भारत के साथ-साथ अलग-अलग राज्यों को कवर करते हैं। अब तक चार वार्षिक सर्वेक्षण रिपोर्ट (जुलाई 2017 से जून 2018, जुलाई 2018 से जून 2019, जुलाई 2019 से जून 2020 और जुलाई 2020 से जून 2021) और 15 तिमाही सर्वेक्षण रिपोर्ट (अप्रैल-जून 2022 तिमाही रिपोर्ट 15 वीं तिमाही रिपोर्ट है) को नई PLFS प्रणाली के तहत प्रकाशित किया गया है।

CMIE हर महीने बड़े पैमाने पर पतिदर्श सर्वेक्षण (sample survey) करता है और पूरे भारत के साथ-साथ अलग-अलग राज्यों के लिए, शहरी भारत के साथ-साथ ग्रामीण भारत के लिए अलग-अलग बेरोजगारी के लिए मासिक डेटा प्रस्तुत करता है। न केवल सामान्य रूप से अर्थशास्त्री बल्कि भारतीय रिजर्व बैंक और नीति आयोग जैसे सरकारी संस्थानों ने भी इन आंकड़ों को उद्धृत करना शुरू कर दिया है क्योंकि वे इन आंकड़ों को विश्वसनीय मानते हैं।

हालांकि, बेरोजगारी पर NSSO डेटा और CMIE डेटा के बीच कुछ अंतर है और CMIE बेरोजगारी डेटा अधिक उच्च है (onthe higher side)।

CMIE मासिक बेरोजगारी डेटा के अनुसार, शहरी भारत में बेरोजगारी के लिए अगस्त 2022 में नवीनतम आंकड़े कुल श्रम शक्ति का 9.57% और ग्रामीण भारत के लिए 7.68% है।

दूसरी ओर, PLFS की 15 वीं तिमाही रिपोर्ट (अप्रैल-जून 2022) दर्शाती है कि अप्रैल-जून 2022 में बेरोजगारी घटकर 7.6% रह गई, जो अप्रैल-जून 2021 में 12.6% थी।

संकट के विभिन्न पहलू

श्रम शक्ति से बाहर है कामकाजी उम्र की अधिकांश आबादी

CMIE के आंकड़ों के अनुसार, 2021-22 में भारत में श्रम बल की भागीदारी दर केवल 42.6% थी। 2022 में, यह अप्रैल 2022 तक 40% तक गिर गई। इसके अलावा, जून 2022 में श्रम बल की भागीदारी दर 38.8% तक गिर गई। नतीजतन, बेरोजगारी के लिए समायोजन के बाद, केवल 35.8% कामकाजी उम्र की आबादी कार्यबल में थी। इसका मतलब है कि उटक्ए के आंकड़ों के अनुसार जून 2022 में भारत में कामकाजी उम्र की आबादी का एक तिहाई से थोड़ा ही अधिक हिस्सा काम कर रहा था।

महिलाओं की घटती श्रम शक्ति भागीदारी

CMIE के आंकड़ों से पता चलता है कि 2017 और 2022 के बीच, 2 करोड़ 10 लाख महिलाएं श्रम बल से "गायब" हो गईं। अब, योग्य कामकाजी उम्र की महिलाओं में से केवल 9% ही श्रम बल में शामिल होती हैं। श्रम बल में शामिल नहीं होने वालों में वे लोग थे जिन्होंने अपनी नौकरी खो दी, और साथ ही वे जो स्वेच्छा से श्रम बल से बाहर हो गए।

श्रम बल में शामिल इन 9% में से भी, जनवरी और अप्रैल 2021 के

बीच, 18.4% महिलाएं जो काम करना चाहती थीं , उन्हें शहरी क्षेत्रों में काम नहीं मिल रहा था और इसलिए वे बेरोजगार रहीं। ग्रामीण महिलाओं के लिए बेरोजगारी दर 11.5% थी। ऐसा नहीं है कि वे सभी जो श्रम शक्ति में नहीं हैं, शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। 2019 में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम में डी. त्रेहान द्वारा प्रस्तुत एक अध्ययन के अनुसार, अवसरों की कमी के कारण, भारत में 15-29 आयु वर्ग की 45% महिलाएं किसी भी शिक्षा, रोजगार या प्रशिक्षण में संलग्न नहीं हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि श्रम शक्ति में महिलाओं की इतनी कम भागीदारी के कारण भारत में समग्र श्रम शक्ति भागीदारी कम है।

युवा रोजगार संकट

युवाओं में श्रम बल की भागीदारी दर अपने आप में बहुत कम है। CMIE के आंकड़ों के अनुसार, 2016-17 और 2021-22 के बीच सभी आयु समूहों के लिए औसत श्रम शक्ति भागीदारी का आंकड़ा 42.6% था, जबकि 15-24 आयु वर्ग के युवाओं के लिए यह 22.7% था। दूसरे शब्दों में, 5 में से केवल एक भारतीय युवा ने श्रम बल में प्रवेश किया। यह पूरी तरह बुरा न लगता अगर बाकी युवा अपनी शिक्षा पूरी कर रहे होते। लेकिन बात ऐसी नहीं थी। बल्कि, बेरोजगारी की दर युवाओं के लिए 34% थी, जो सचमुच दिमाग चक्रा देती है। जबकि 2021-22 में सभी आयु समूहों के लिए यह केवल 7% थी। इससे पता चलता है कि भारत में युवा बेरोजगारी का संकट बहुत तीव्र है और यह कुछ निश्चित परिस्थितियों में बहुत विस्फोटक हो सकता है, जैसा कि अग्निपथ विरोध के दौरान देखने को मिला था।

कृषि में कार्यरत लोगों के हिस्से में गिरावट

यदि हम कृषि में कार्यरत लोगों को लें - जिनमें किसान, खेतिहर मजदूर और अन्य कृषि-आधारित ग्रामीण मजदूर शामिल हैं - देश के कुल कार्यबल में उनका हिस्सा 1993-94 में 61.9% से गिरकर 2018-19 में 41.4% हो गया (नीचे चित्र देखें)।

स्रोतः पहले 4 कॉलम NSSO अलग-अलग राउंड और आखिरी 3 कॉलम PLFS रिपोर्ट।

केवल 2019-20 और 2020-21 के महामारी के वर्षों में, जिसमें प्रवासियों का संकट सामने आया, देश के कुल कार्यबल में कृषि क्षेत्र की सापेक्ष हिस्सेदारी बढ़ी। ऐसा इसलिए था क्योंकि कृषि क्षेत्र ने लौटने वाले प्रवासियों को अवशोषित कर लिया था, और इस अर्थ में यह केवल संकटकालीन रोजगार (distress employment) था। न केवल कृषि के सापेक्ष हिस्से के संदर्भ में, निरपेक्ष रूप से भी किसानों की संख्या और यहां तक कि खेतिहर मजदूरों की संख्या में भी पिछले कुछ वर्षों में गिरावट आई है। 25 मार्च 2021 को 'मिंट' में प्रकाशित विद्या म हांबारे एट ऑल द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि केरल में 20 से 59 वर्ष के प्रमुख कामकाजी आयु वर्ग में, किसानों के रूप में या खेतिहर मजदूरों के रूप में कृषि में काम करना, 2004-05 में 20.3% से गिरकर 2018-19 में 8.5% हो गया था, जबकि मध्य प्रदेश में यह 2004-05 में 51.7% से घटकर 2018-19 में 35.3% हो गया, और यहां तक कि पंजाब और हरियाणा में भी कृषि में काम करने वाली आयु-आबादी का हिस्सा 2018-19 में 20% से कम रहा। कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र बड़ी संख्या में रोजगार पैदा करने की स्थिति में नहीं है, खासकर गुणवत्तापूर्ण रोजगार। बल्कि युवा तो खेती से बाहर जा रहे हैं।

रोजगार के अवसर- आवश्यक बनाम रोजगार उत्पन्न

CMIE के आंकड़ों के अनुसार भारत में श्रम बल मार्च 2022 में 88 लाख बढ़कर अप्रैल 2022 में 43.72 करोड़ हो गया।

हालांकि, हम देखें कि भारत में औपचारिक नौकरियों का विस्तार बहुत पीछे रह गया है। सरकार नए ईपीएफओ (EPFO) सब्सक्रिप्शन की संख्या में वृद्धि के आधार पर औपचारिक नौकरियों के विस्तार के आंकड़े तक पहुंचती है। पर जरूरी नहीं कि वे नई नौकरियां हों क्योंकि औपचारिक क्षेत्र के उद्यमों में नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों को EPFO ग्राहकों के रूप में नामांकित किया जाता है। फिर भी, इसे औपचारिक क्षेत्र की नौकरियों के विस्तार के संकेतक के रूप में माना जा सकता है। 24 फरवरी 2022 के प्रेस सूचना ब्यूरो डेटा के अनुसार, EPFO सदस्यता में वृद्धि के संदर्भ में देखें तो औपचारिक क्षेत्र की नौकरियों का विस्तार 2018-19 में 61,12,223 नौकरियां, 2019-20 में 78,58,394 नौकरियां, 2020-21 में 77,08,375 नौकरियां रहीं। और, 2021-22 में 92,39,070 नौकरियां थीं। यहां ध्यान दें कि पूरे 2021-22 में 92 लाख नौकरियां पैदा हुईं, जबकि अकेले अप्रैल 2022 के महीने में, यानि एक माह में श्रम बल में 88 लाख का विस्तार हुआ था। यानि,औपचारिक क्षेत्र में रोजगार सृजन की तुलना में श्रम बल का विस्तार कहीं अधिक रहा है।

क्या अनौपचारिक क्षेत्र के रोजगार में विस्तार हर महीने हो रहे कार्यबल में शेष ताजा वृद्धि को पाट सकता है? क्या वह बेरोजगारों के बैकलॉग को खत्म कर सकता है ? PLFS 2017-18 के अनुसार, भारत ने हाल के वर्षों में अपने कार्यबल में सालाना 50 लाख से 1 करोड़ अनौपचारिक श्रमिकों को जोड़ा है। पर CMIE मासिक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत ने अगस्त 2022 में केवल 21 लाख अनौपचारिक नौकरियों को जोड़ा है।

श्रम शक्ति में वृद्धि और सृजित नए रोजगार के समग्र रुझानों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्रियों ने निष्कर्ष निकाला है कि रोजगार में औसत वृद्धि श्रम बल में वृद्धि से पिछड़ रही है, जिसके कारण बेरोजगारी में लगातार वृद्धि हो रही है। यह भारत में रोजगार संकट की जड़ है।

भारत में रोजगार संकट के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं। उनमें से प्रमुख हैं निजीकरण, पारंपरिक सफेदपोश रोजगार निर्माण में ठहराव, आईटी नौकरियां और ई-कॉमर्स नौकरियां स्थिर रह रही हैं, नई प्रौद्योगिकियों का विकास जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (artificial intelligence आईटी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर स्वचालन की ओर बढ़ने का संकेत दे रही है जिससे नौकरियां घट रही हैं; न केवल आईटी क्षेत्र में बल्कि विनिर्माण आदि में भी डिजिटलीकरण का प्रसार बढ़ रहा है।

भारत में रोजगार संकट का एक और पहलू यह है कि रोजगार का विस्तार मुख्य रूप से अनौपचारिक क्षेत्र में हो रहा है। कई औपचारिक क्षेत्र की नौकरियां भी अनौपचारिक बन रही हैं। जिन नौकरियों का विस्तार हो रहा है, वे मुख्य रूप से गिग वर्कर्स, स्कीम वर्कर्स और कॉन्ट्रैक्ट लेबर की हैं। उनमें से ज्यादातर अनिश्चित श्रमिक हैं।

(न्यूज क्लिक से साभार)

■

दुर्गेश कुमार

2024 को प्रभावित करेगा रोजगार का 'तेजस्वी माडल'

नरेंद्र मोदी की गलत नीतियों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था बेरोजगारों के लिए बांझ हो चुकी है। भारत की अर्थव्यवस्था के संबंध में छपे विभिन्न रिपोर्टों को देखें तो ऐसा लगता है कि भारत की जीडीपी का बढ़ने और रोजगार पैदा करने में कोई भी समानता नही है। भारत की जीडीपी के स्वाभाविक रूप से बढ़कर 2.5 ट्रिलियन हो जाने पर भारतीय जनता पार्टी द्वारा हर्ष मनाने का स्वांग रचा गया, नाटकीय ढंग से बीजेपी के सारे नेता-कार्यकर्त्ता बधाई-बधाई खेल रहे थे। हालांकि दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का 2024 तक भारत की जीडीपी को 5 ट्रिलियन तक करने का दावा असंभव-सा प्रतीत होता है। किन्तु इसके बावजूद ह्यहर्षह्ल का स्वांग रचना ऐसा लगा जैसे भारत की जनता को हकीकत से गुमराह किया जा रहा हो। जबकि कड़वा सत्य यह है भी भारत की जीडीपी बेरोजगारों के लिए बांझ हो गई है, किन्तु गौतम अदानी, मुकेश अम्बानी जैसे 98 उद्योगपतियों के लिए दुधारू गाय की तरह है, जो देश के निचले 55.2 करोड़ लोगों की कुल बराबर संपति रखते हैं। ऑक्सफेम इंडिया की CMIE नाम से जारी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के कुल 84% परिवारों की आय में गिरावट हुआ है, इसी दौर में भारत में अरबपतियों की संख्या 102 से बढ़ कर 142 हो गई है।

मोदी की गलत आर्थिक नीतियों के कारण देश में बेरोजगारी भी चरम सीमा के स्तर को पार करभ चुकी है। अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के Center For Sustainable Employment नाम से जारी रिपोर्ट के अनुसार जीडीपी में 10 प्रतिशत की बढ़त होने पर रोजगार सृजन में बढ़त 1 प्रतिशत से भी कम हो रहा है। जबकि साल 1970-80 के दशक में यह आंकड़ा 3-4 प्रतिशत था। जिससे स्पष्ट होता है कि जीडीपी के स्वाभाविक गति से बढ़ने पर हर्ष मनाना कहीं-न-कहीं हास्यापद है, क्योंकि यह वैसा दौर है जब बेरोजगारी अपने उच्चतम स्तर पर है। उट्क्स के अनुसार माह सितम्बर 2022 में भारत में बेरोजगारी दर 6.43 प्रतिशत है। उच्चतम बेरोजगारी दर वाले राज्यों को देखा जाए तो राजस्थान में 23.8 प्रतिशत, जम्मू & कश्मीर में 23.2 प्रतिशत, हरियाणा में 22.9 प्रतिशत, झारखंड में 12.2 प्रतिशत, बिहार में 11.4 प्रतिशत, गोवा में 10.9 प्रतिशत, दिल्ली में 9.6 प्रतिशत एवं हिमाचल प्रदेश में 9.2 प्रतिशत है। मोदी सरकार की गलत आर्थिक नीति के कारण जनता भी परेशान है। परेशान जनता गाहे-बगाहे किसी-न-किसी रूप में गुस्सा निकालती ही है। जैसे कभी रेलवे भर्ती परीक्षा के रद्द किये जाने, अग्निवीर की भर्ती किये जाने जैसे अनेक मुद्दों पर सड़क पर विरोध के लिए युवा सड़क पर उतर जा रहे हैं। यह मोदी की गलत आर्थिक नीतियों का परिणाम है।असल में केंद्र सरकार अपनी गलत नीतियों के कारण बेरोजगारों की फौज जमा कर चुकी है। किन्तु अफसोस है कि वह इस जबाबदेही को स्वीकार करने की बजाय अन्य दिशा में व्यस्त है। आर एस एस के प्रमुख मोहन भागवत का यह कहना की कितने को सरकारी नौकरी दी जाय बीजेपी के नक्कारेपन को छिपा नहीं सकता है। यह नक्कारापन सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों को बेचना, निजीकरण करना, आउटसोर्सिंग के तहत सरकारी कंपनियों में भर्ती करना जैसे कई प्रकार की नीतियों में दिखाई देता है। सरकारी नौकरी देने की जगह सरकारी कंपनियों को बेचना भारत के उस आम आदमी के हित के खिलाफ है जो किसान, पशुपालक, कामगार, शिल्पकार हैं। सरकारी नौकरियों में निश्चित आय, सुरक्षित भविष्य होने के कारण इस वर्ग का युवा अपनी आर्थिक और सामाजिक हैसियत में बढ़ोतरी करने में सफल रहता था। सरकारी नौकरी न सिर्फ सरकारी कामकाज के लिए सुरक्षित स्रोत है बल्कि यह गरीबों के आर्थिक उत्थान के लिए शानदार व्यवस्था है। किन्तु मोदी सरकार की कुदृष्टि के कारण यह व्यवस्था भी मृत-सी होने लगी है। किन्तु इसी दौर में बिहार में महागठबंधन की सरकार है की 10 लाख सरकारी नौकरियों की घोषणा कर तकरीबन 3 लाख सरकारी पदों पर भर्ती की प्रक्रिया शुरू कर चुकी है। एक तरह से बिहार सरकार ने केंद्र सरकार को आईना दिखाया है कि वह अपनी नीयत में खोंट को खत्म करे और सरकारी नौकरियों को चालू करे। विशेष तौर पर दस लाख नौकरियों की घोषणा समेत कई जन कल्याणकारी योजनाएं बिहार विधानसभा चुनाव 2020 में राष्ट्रीय जनता दल के घोषणापत्र में शामिल था। किन्तु तेजस्वी यादव के मुख्यमंत्री नहीं बन पाने के कारण राजद का घोषणापत्र लागू होने की तो कोई बात ही नहीं है, किन्तु 2022 में नीतीश कुमार के नेतृत्व में महागठबंधन की सरकार बनने के बाद भी उपमुख्यमंत्री तेजस्वी यादव ने रोजगार के सवाल पर जो प्रखरता दिखाई है, यह आगामी लोकसभा में राजनीतिक विमर्श को प्रभावित करेगा। लोकसभा चुनाव 2024 के पहले यदि 4 लाख सरकारी नौकरी भी देने में भी सफल रहे तो देश के लिए नजीर पेश होगा। बिहार आर्थिक रूप से पिछड़ा राज्य है, यदि 2.37 लाख करोड़ सालाना बजट में बिहार 5-10 लाख सरकारी नौकरी सृजित किया सकता है तो उस पैमाने पर बीजेपी शासित राज्य समेत केंद्र सरकार भी तौले जायेंगे। मौजूदा दौर में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, हरियाणा जैसे बड़े राज्यों में बीजेपी की सरकार है। उद्योग धंधे वाले राज्य माने जाने वाले हरियाणा में भी बेरोजगारी दर बिहार के मुकाबले अधिक है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में कितनी सरकारी नौकरियां सृजित की गयी हैं, इन सवालों के दायरे में आने से बीजेपी बच नही सकती है। सवाल तो यह भी होंगे कि यदि बिहार इतने ही बजट में दस लाख नौकरियों की घोषणा कर सकता है तो केंद्र सरकार को भी बड़े स्तर पर नौकरियों की घोषणा कर देनी चाहिए। यदि वह ऐसा करने में भी नाकामयाब है तो कम-से- कम खाली पड़े 9 लाख 79 हजार 327 पदों को भरने की भी घोषणा कर देती तो निकम्मेपन का दाग नही लगता। बिहार सरकार का यह 'तेजस्वी प्रयोग' बीजेपी के उस आर्थिक मॉडल को चुनौती है जिसमे याराना पूंजीवाद को लागू कर राष्ट्र की संपति को निजी हाथों में सौप कर नागरिकों को मानव मशीन बनाने की साजिश है। इस दौर में नरेन्द्र मोदी सरकारी नौकरियों को खत्म करने के लिए कुख्यात हो गए है वहीं तेजस्वी प्रसाद यादव सरकारी नौकरियों की भर्ती के लिए विख्यात हो गये हैं। आगामी चुनाव में यह भारतीय जनता पार्टी के लिए परेशानी का सबब बनेगा।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं।)

■

जंगबहादुर बेदिल

रोजगार की सरकार

अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र प्रदान करते माननीय उप मुख्यमंत्री ।

बिहार में राजनीतिक उलटफेर के बाद महागठबंधन की सरकार बनी और सरकार बनते ही उप मुख्यमंत्री तेजस्वी प्रसाद यादव ने कहा कि हमें अपनी बातें याद हैं, जल्द ही दस लाख रोजगार देने का काम शुरू किया जाएगा। शपथ ग्रहण के एक सप्ताह भी पूरे नहीं हुए कि बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में आठवीं बार शपथ लेने वाले नीतीश कुमार जी ने आजादी की 75 वीं वर्षगांठ पर गांधी मैदान में मंच से घोषणा कर दिया कि 10 लाख नौकरी के साथ ही 10 लाख और रोजगार देने की व्यवस्था करेगी बिहार सरकार। यह खबर सुनते ही बिहार के युवाओं में और उम्मीद जग गई। महागठबंधन सरकार बनने के बाद सबसे पहले राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग का 20 सितम्बर, 2022 को नियुक्ति पत्र वितरण समारोह का आयोजन किया जिसमें मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में 4322 नवनियुक्त राजस्व कर्मचारियों को नियुक्ति पत्र वितरित किया गया। कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए माननीय उप मुख्यमंत्री तेजस्वी जी ने कहा- "बिहार के युवा पढ़-लिख कर डिग्री लेकर नौकरी ढूंढते हुए चप्पल घिसा देते हैं, पर नौकरी नहीं मिलती है। हम बेरोजगारी के मुद्दे पर हमेशा बेरोजगारों के साथ रहे हैं, क्योंकि बेरोजगारों को रोजगार देकर बेरोजगारी मिटाना बहुत जरूरी है। आज मुझे प्रसन्नता हो रही है कि माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी के नेतृत्व में हमारी सरकार द्वारा सफल अभ्यर्थियों को इस मंच से नियुक्ति पत्र वितरित किया जा रहा है। हर मां-बाप का यही सपना होता है कि हमारे बेटे-बेटी को जितना जल्दी हो सके नौकरी मिल जाये। आज महंगाई चरम पर है। मैं देख रहा था कि जब मुख्यमंत्री जी से नियुक्ति पत्र लेकर हमारी बहनें जाकर कुर्सी पर बैठ रही थीं तो उनके चेहरे पर एक प्रकार की मुस्कान दिख रही थी। आपके चेहरे पर प्रसन्नता और सुकून साफ झलक रहा है। यह महागठबंधन की जो सरकार बनी है वह आपके चेहरे पर मुस्कान दिलाने के लिए ही बनी है। हमारा और हमारी सरकार का विशेष रूप से माननीय मुख्यमंत्री जी का प्रयास है कि पूरे बिहावासियों के चेहरे पर हमेशा मुस्कान दिखे। राजस्व विभाग के माननीय मंत्री, सचिव, सभी पदाधिकारी एवं सभी कर्मचारीगण को बधाई के पात्र हैं, क्योंकि इस सरकार में नौकरी देने की शुरूआत इसी विभाग ने किया है। आज से जो यह सिलसिला शुरू हुआ है, उसे रुकने नहीं देना है, इसे आगे भी जारी रखना है। आज नियुक्ति पत्र पाने के बाद जो खुशी व मुस्कान आपके चेहरे पर है, वही खुशी व मुस्कान आप उन सभी के चेहरे पर भी देने का प्रयास कीजिएगा, जो आपके पास अपने काम का निष्पादन कराने आएंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि आप अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाएंगे। जिस विभाग में आप सेवा देने जा रहे हैं, उसमें राजस्व कर्मचारियों की कमी के कारण कुछ कठिनाइयां सामने आती रही होंगी लेकिन आपके आ जाने से विभाग को बहुत बल मिलेगा और काम का निष्पादन तेजी से किया जाएगा।" आगे उन्होंने कहा कि, "बड़ी खुशी की बात है कि बिहार देश का पहला राज्य है जहां मैप (नक्शा) डिजिटलाइज तरीके से होम डिलीवरी की सुविधा बहाल की गई है। पढ़ाई, दवाई, सिंचाई, सुनवाई एवं कार्रवाई हमारी प्राथमिकता में है और इसे पूरी तरह से लागू करने के लिए समीक्षा का दौर जारी है। रोजगार देना हमारा सिर्फ वादा नहीं था, बल्कि यह प्रण है, जिसे आज हम पूरा करने में लगे हुए हैं।" केंद्र की भाजपा सरकार पर निशाना साधते हुए तेजस्वी जी ने कहा कि, "आजकल कुछ लोग अपने रोजगार के वादा को पूरा करने की बजाय विदेश से चीता लाने में लगे हुए हैं। ठीक है आप लाइये लेकिन यह तो बताइए कि आपकी प्राथमिकता में क्या है? देश में इतनी गरीबी है, महंगाई है, विकराल बेरोजगारी है, लेकिन इस पर केंद्र सरकार का कोई ध्यान नहीं है। बिहार में बाढ़-सुखाड़ के बावजूद सीमित संसाधन में माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी के नेतृत्व में हम लोग इतना काम कर रहे हैं लेकिन बार-बार मांगने के बाद भी केंद्र सरकार बिहार को विशेष राज्य का दर्जा या विशेष पैकेज नहीं दे रही है वरना बिहार और तेजी से विकास करता।" एक सप्ताह बाद पुनः राजधानी पटना के ज्ञान भवन में 27 सितम्बर, 2022 को नियुक्ति पत्र वितरण समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें नवनियुक्त 283 पशु चिकित्सा पदाधिकारी तथा 194 मत्स्य विकास पदाधिकारी को नियुक्ति पत्र दिया गया। माननीय उप मुख्यमंत्री तेजस्वी प्रसाद यादव ने सभी चयनित अभ्यर्थियों को बधाई एवं शुभकामना देते हुए अपने सम्बोधन में कहा कि, "हमलोग झूठ नहीं बोलते हैं। जुमला वाली पार्टी के नहीं हैं। रोजगार देने का वादा पूरा करेंगे। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी के नेतृत्व में बिहार का विकास हो रहा है। केंद्रीय गृहमंत्री बिहार के लोगों को गलत गणित बता कर चले गए, लेकिन बिहार के लोग गलत गणित पढ़ेंगे नहीं।" 28 सितम्बर, 2022 को उप मुख्यमंत्री सह पथ निर्माण मंत्री तेजस्वी प्रसाद यादव ने चयनित कनीय अभियंताओं को नियुक्ति पत्र वितरित करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की। साथ ही उन्होंने कर्मठता, ईमानदारी एवं पारदर्शिता के साथ जनहित में कार्य करने के लिए सभी कनीय अभियंताओं को प्रोत्साहित भी किया।

■

डॉ. राम मनोहर लोहिया : जीवन-झांकी

सुविख्यात समाजवादी डा. राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में अकबरपुर में हुआ था। उनके पिता श्री हीरा लाल लोहिया एक व्यापारी थे। मूलतः उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश में मिजार्पुर के निवासी थे। "लोहिया" उपनाम उनके परिवार द्वारा पीढ़ियों से लोहे का व्यापार करने के कारण, पड़ा। लोहिया जी जब ढाई वर्ष के ही थे, तभी उनकी माता जी का देहान्त हो गया था। अतः उनका लालन-पालन उनकी दादी तथा चाची द्वारा किया गया।

बचपन में लोहियाजी को अपने परिवार में ऐसा वातावरण मिला, जो जातीय तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से अछूता था। उनको देशभक्ति की प्रबल भावना उनके पिता की देन थी, जो एक सक्रिय कांग्रेसी थे तथा गांधी जी के पके अनुयायी थे। बचपन से ही लोहियाजी को जरूरतमंदों के प्रति पूरी सहानुभूति थी और इसीलिये वह हमेशा गरीबों तथा दलितों की सहायता करने के लिए तत्पर रहते थे।

शिक्षा

उनकी प्रारंभिक शिक्षा अकबरपुर में टंडन पाठशाला और विश्वेश्वर नाथ हाई स्कूल में हुई। वह अपनी कक्षा में बराबर प्रथम आते रहे और अपने शिक्षकों के प्रिय छात्र बने रहे। पिता के अकबरपुर से बम्बई चले जाने पर उन्होंने अपनी शिक्षा बम्बई के मारवाड़ी स्कूल में जारी रखी और 1925 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। उनकी इन्टरमीडिएट शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। वर्ष 1926 में जब वह केवल 16 वर्ष के ही थे, उन्होंने गौहाटी में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वर्ष 1927 में उन्होंने इन्टर की परीक्षा पास की और वह आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गये। यहां उनके जीवन में घटी एक घटना उल्लेखनीय है। उस समय कलकता में दो सरकारी कॉलेज थे जिनका काफी नाम था। इनके अलावा वहां विद्यासागर कॉलेज नामक एक गैर-सरकारी कालेज भी था। उस कॉलेज के शिक्षक राष्ट्रीय विचारधारा के थे। जब कालेज में दाखिले का प्रश्न उनके समक्ष आया तो लोहियाजी ने एक सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते, उच्च शिक्षा के लिए उक्त दोनों सरकारी कालेजों में से किसी में दाखिला न लेकर विद्यासागर कालेज में दाखिला लेना पसन्द किया। वर्ष 1929 में उन्होंने बी०ए० की परीक्षा पास की और इसके तीन वर्ष पश्चात 1932 में बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी०एच०डी० की डिग्री प्राप्त की; उनके शोध विषय "साल्ट एन्ड सिविल डिसओबीडिएन्स" था। बर्लिन में ही उन्होंने मार्क्स तथा हीगेल की कृतियों का अध्ययन किया। समाजवाद के प्रति निश्यित झुकाव के साथ उन्होंने बर्लिन छोड़ा। लोहियाजी गांधीजी के आदर्शों, मूल्यों तथा तरीकों से भी बहुत प्रभावित थे।

डा. लोहिया की बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन की अवधि उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दौर था। लोहियाजी अपने बाल्यकाल से ही एक अच्छे वक्ता थे। विश्वविद्यालय में एक मेघावी बुद्धिजीवी के रूप में उन्होंने भाषण देने की अपनी एक अलग शैली विकसित की, जो बहुत ही तर्कसंगत होती थी और श्रोताओं को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। उन दिनों यह विश्वविद्यालय, जो उस समय "काशी विश्वविद्यालय" के नाम से जाना जाता था, ऐसे मेधावी युवकों को तैयार करने के लिए सुविख्यात था जो देश का नाम उज्ज्वल कर सकते थे और उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते थे। लोहियाजी उनमें से एक थे।

एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में

लोहियाजी जब बहुत छोटे थे, तभी स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े। घर में मिले माहौल के कारण राजनीति में उनकी रुचि और बढ़ गई। उनके पिता 1918 में अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए उन्हें अपने साथ ले गये। जब वे मात्र दस वर्ष के थे, तभी उन्होंने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर सन् 1920 में छात्रों की एक हड़ताल कराई थी। महान स्वतंत्रता सेनानी लोहियाजी ने गांधीजी द्वारा शुरू किये गये असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1928 में उन्होंने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने के लिए कलकत्ता में आयोजित एक बैठक की अध्यक्षता भी की थी। लोहियाजी कलकत्ता में आयोजित एक युवा अधिवेशन में पंडित नेहरू के सम्पर्क में आये और दोनों में घनिष्ठ संबंध स्थापित हुए।

1933 में डॉ. लोहिया के बर्लिन से वापस लौटने पर कांग्रेस पार्टी में एक ऐतिहासिक घटना घटी, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इसकी स्थापना में डा. लोहिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिन्हें इस पार्टी का एक आधार स्तम्भ माना गया। इस पार्टी ने समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करते हुए कहा कि केवल मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का मार्गदर्शन कर सकता है और उन्हें अपनी मंजिल तक पहुंचा सकता है। पार्टी ने इस बात पर भी बल दिया कि कांग्रेस के संगठनात्मक ढांचे का लोकतांत्रीकरण किया जाए।1936 में युवा लोहियाजी को कांग्रेस पार्टी के विदेश विभाग का सचिव बनाया गया तथा इस पद पर उन्होंने उल्लेखनीय योग्यता के साथ अगस्त, 1938 तक कार्य किया। कांग्रेस पार्टी के विदेशी मामलों के सचिव के रूप में लोहियाजी ने भारत की विदेश नीति का आधार तैयार करने में मुख्य भूमिका निभायी। उन्होंने उस समय विश्व के दूसरे भागों में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों के साथ निकट सम्पर्क बनाये रखा तथा एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में प्रगतिशील संगठनों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किये। सचिव के रूप में उन्होंने "दि फारेन पालिसीज आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि ब्रिटिश लेबर पार्टी (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और ब्रिटिश लेबर पार्टी की विदेश नीतियां) नामक एक लेख लिखा, जिसे पंडित नेहरू ने 'उत्कृष्ट कृति' बताया ।

लोहियाजी विदेशों में रहने वाले भारतीयों की समस्याओं से अवगत थे तथा उन्होंने भारत की जनता को उनकी दयनीय दशा के बारे में बताया। उन्होंने विश्व का ध्यान भारत में तथा अन्य देशों में किये जा रहे नागरिक स्वतंत्रताओं के दमन की ओर भी दिलाया। 24 मई, 1939 को उन्हें पहली बार सरकार विरोधी भाषण देने के कारण, गिरफ्तार किया गया और जेल भेजा गया लेकिन अगले ही दिन जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनका विचार था कि देश को आजादी अपने आप नहीं मिल जायेगी। उन्होंने लेख लिखकर तथा पैम्फलेट निकाल कर लोगों में जागरूकता पैदा की।

वे इस मत के समर्थक थे कि भारत को द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजों को कोई सहयोग नहीं देना चाहिए। उन्होंने पूर्ण असहयोग की वकालत की। कहा कि तत्कालीन सरकार को जन-धन का सहयोग नहीं दिया जाना चाहिए। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 1939 में युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने का संकल्प पारित किया तो लोहिया जी ने उसका विरोध किया तथा "डाउन विद आमामैट्स" शीर्षक से एक

लेख लिखा। 1940 में उन्हें युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण गिरफ्तार किया गया। महात्मा गांधी ने इसे पसन्द नहीं किया और इस पर कटु प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसकी भर्त्सना करते हुए गांधीजी ने कहा कि राममनोहर लोहिया तथा जयप्रकाश नारायण जैसे देशभक्तों को जेल में बंद करना सहन नहीं किया जायेगा और वे सार्वजनिक स्वातंत्र्य में इस बढ़ते हुए हस्तक्षेप के मूक दर्शक नहीं बने रहेंगे। 1940 में गांधीजी द्वारा आरम्भ किये गये व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उद्देश्य जनता के लोकतांत्रिक स्वातंत्र्य के अधिकार पर जोर देना था। डॉ. लोहिया ने 1942 के "भारत छोड़ो आन्दोलन" में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्होंने भूमिगत रहकर इस आंन्दोलन का संचालन किया तथा लगभग दो वर्ष तक पकड़े नहीं जा सके। उन्होंने भूमिगत रेडियो स्टेशन भी स्थापित किया। उन्होंने अपने समय का सदुपयोग लघु पुस्तिकायें, पम्फलेट और "हाउ टू एस्टेब्लिश एन इन्डिपेंडेंट गवर्नमैट?", "आई एम फ्री", "प्रिपेयर फार दि रिवोल्यूशन" और "ब्रेव फाइटर्स मार्च फारवर्ड" जैसे प्रेरणादायक लेख लिखकर किया। इस अवधि में उन्होंने "डू और डाई" (करो या मरो) नामक पत्रिका भी प्रकाशित की। भूमिगत रहते हुए उन्होंने एक अन्य विद्वतापूर्ण लेख "इकानामिक्स आफ्टर मार्क्स" भी लिखा। लेकिन 20 मई, 1944 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 11 अप्रैल, 1946 तक उन्हें जेल में रखा गया। बाद में उन्होंने गोवा और नेपाल के लोगों की स्वतंत्रता के लिये भी कार्य किया। डॉ. लोहिया को भारत, गोवा और नेपाल के स्वतंत्रता आन्दोलनों में तथा स्वतंत्र भारत और अमेरिका में अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण 25 बार गिरफ्तार किया गया।

समाजवादी के रूप में

1947 में कानपुर में हुए एक सम्मेलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नाम से कांग्रेस शब्द हटाकर दल का नाम सोशलिस्ट पार्टी रख दिया गया यद्यपि यह कांग्रेस का ही अंग बनी रही। 1948 में, डॉ. लोहिया द्वारा स्थापित सोशलिस्ट पार्टी ने स्वयं को कांग्रेस से अलग कर लिया। 1952 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ और 1953 में डा. लोहियां इसके महासचिव चुने गये। 1955 में समाजवादियों ने हैदराबाद में एक बैठक की तथा डा. लोहिया के सभापतित्व में एक नई सोशलिस्ट पार्टी आफ इंडिया का गठन किया गया।

डॉ. लोहिया एक महान समाजवादी थे तथा वह जनतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा में विश्वास करते थे और सदैव जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को संसदीय साधनों द्वारा सत्ता दिये जाने के पक्षधर थे, लेकिन वह सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध अहिंसक सीधी कार्यवाही के समर्थक थे। उनका सृजनात्मक मस्तिष्क नये विचारों की खान था तथा वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैचारिक समस्याओं के प्रति अव्यवहारिक रवैये के एकदम विरुद्ध थे। वह सभी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले अनथक योद्धा थे तथा उन्होंने समाज के दलित वर्गों को सामाजिक समानता तथा तरजीही अवसर प्रदान करने की पुरजोर वकालत की ताकि वे सदियों से चले आ रहे कष्टों से छुटकारा पा सकें।

डॉ. लोहिया बुराई का विरोध करने पर बहुत बल देते थे और वह रचनात्मक कार्य के महत्व को भी समझते थे। उनका विचार था कि राजनीति को सत्ता से अलग नहीं किया जा सकता। वह इस विचार के समर्थक थे कि राज सत्ता का नियंत्रण तथा मार्गदर्शन जनशक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। देश में सामाजिक क्रांति लाने के लिए उन्होंने जेल, कुदाल तथा वोट के सम्मिलित सूत्र का प्रतिपादन किया। उन्होंने देश के पुनर्निर्माण हेतु युवाओं द्वारा बिना पारिश्रमिक लिये एक घंटे का स्वैच्छिक श्रमदान किये जाने का आह्वान किया।

भारतीय शासन व्यवस्था में उनका मुख्य योगदान गांधीवादी विचारों को समाजवादी विचारधारा में समाविष्ट करना था। विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखने वाले लोहियाजी ने कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा छोटी मशीनें लगाने की आवश्यकता पर बल दिया जिनमें कम-से-कम पूंजी निवेश हो तथा अधिक से अधिक जनशक्ति का उपयोग हो सके। लोहियाजी इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि देश के लोग गांवों में रहते हैं। इसलिए वह गरीब किसानों, भूमिहीनों तथा हर मजदूरों की आकांक्षाओं के प्रतीक बन गये। वर्ष 1947 से ही उन्होंने 'किसान मार्च' का आयोजन तथा उनके लिए संघर्ष करना आरम्भ कर दिया था। वह उन महान नेताओं में से थे, जिन्होंने न केवल हमारे सामाजिक संबंधों की आमूल पुनर्व्यवस्था करने की आवश्यकता की वकालत की बल्कि क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए वैचारिक आधार भी प्रदान किया। वह सदैव साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रांति के हामी थे। अमरीकी सरकार ने 1964 में उन्हें नीग्रो लोगों के समान अधिकार सम्बन्धी आन्दोलनों में भाग लेने के सिलसिले में गिरफ्तार किया था।

सामाजिक समता के अथक हिमायती के रूप में उन्होंने जन्म के आधार पर जाति प्रथा तथा परम्परागत व्यवस्था की निन्दा की। उनकी मान्यता थी कि यह राष्ट्र के पतन तथा इस पर बार-बार बाहरी आक्रमण व विदेशी शासन का शिकार होने का अकेला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था। उन्होंने 'डेस्ट्राय कास्ट' (जाति प्रथा नाश) आन्दोलन भी चलाया था। उन्होंने कहा था कि परम्परागत विषम समाज में सभी को बराबर अवसर प्रदान करने मात्र से समता स्थापित नहीं की जा सकती। उन्होंने यह भी कहा कि पिछड़े वर्गों महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों तथा अविकसित अल्पसंख्यकों को उन्नत वर्गों के स्तर तक लाने के लिए विशेष अवसर देने होंगे। डॉ. लोहिया का दृष्टिकोण विश्वव्यापी था। वह राष्ट्रीयता या नस्ल के बंधन से मुक्त मन की नागरिकता तथा वैचारिक नागरिकता के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। डॉ. लोहिया ने देश-विदेश का काफी भ्रमण किया था और उनका स्वन था कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हो जिसमें व्यक्ति विश्व में कहीं भी बिना पासपोर्ट या वीसा के यात्रा कर सके। वे संसद तथा विश्व सरकार के पक्ष में थे जिसमें प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र अपनी प्रभुसत्ता का एक भाग स्वेच्छा से हस्तांतरित करें। वह 1949 में विश्व सरकार के लिए हुए सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि भी निर्वाचित हुए। क्रांति के बारे में लोहियाजी के अपने विचार थे। निम्नलिखित स्थितियों में उन्होंने क्रांति को उचित ठहराया : (1) नर और नारी में पूर्ण समानता स्थापित करने के लिए क्रांति; (2) चमड़ी के रंग पर आधारित आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध क्रांति; (3) जन्म के आधार पर जाति प्रथा के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिए क्रांति; (4) विदेशी दासता से मुक्ति, स्वतंत्रता और जनतांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए क्रांति; (5) पूंजी संचय में व्याप्त असमानता को दूर करने, आर्थिक समानता लाने एवं नियोजित ढंग से उत्पादन में वृद्धि के लिए क्रांति; (6) निजी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप को रोकने और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली स्थापित करने के लिये क्रांति; और (7) परम्परागत तथा परमाणु अस्त्र-शस्त्रों के विरुद्ध तथा सत्याग्रह को अचूक हथियार के रूप में स्वीकृति दिलवाने के लिए क्रांति ।

जननायक के रूप में

लोहियाजी की महानता उनकी सादगी और उनके दिल में अपने देशवासियों के लिए व्याप्त असीम प्यार से झलकती थी। वह उनके सुख-दुख में बराबर के साझीदार थे। उनमें श्रद्धा, प्रेम, विनम्रता, क्रोध और

सहनशीलता जैसी मानवीय भावनाओं का आदर्श संगम था। वह एक जुझारू क्रांतिकारी और गतिशील राजनैतिक तथा आर्थिक विचारों के प्रतिपादक थे। वह जननायक थे और सदैव उन्हीं की भाषा में बोलते थे। उनके तूफानी भाषणों की गूंज से न केवल लोकसभा गुंजायमान होती थी, जहां वह तत्कालीन सरकार की नीतियों की धज्जियां उड़ाते थे, बल्कि तीस वर्षों से भी अधिक समय तक राष्ट्रीय जीवन के व्यापक क्षेत्र को भी प्रभावित करते रहे। सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते वह देश के नवयुवकों तथा नवयुवतियों द्वारा पाश्चात्य जीवन-शैली की नकल करने के विरुद्ध थे। वह भारतीय सभ्यता के पके समर्थक थे। वह चाहते थे कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी राष्ट्रीय भाषा के रूप में फले-फूले और अंग्रेजी यहां से चली जाए। अंग्रेजी के प्रति मोह को उन्होंने 'पापमय जीवन' की संज्ञा दी थी। गांधीजी की तरह लोहियाजी ने दमनकारी तथा क्रूर कानूनों के प्रति अपनी अवज्ञा की भावना का परिचय दिया था। उनके लिए इस प्रकार के कानूनों की विद्यमानता ही असहनीय था। डा. लोहिया निजी रूप से भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे और भारत के स्वतंत्र होने पर तथा देश का विभाजन होने के बाद उन्होंने देश के विभिन्न भागों में एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के लिए निडरता से अनथक प्रयास किया।

लेखक के रूप में

लोहिया जी लेखनी के धनी थे। उनके विचार मौलिक थे और वह सदैव जनमानस में जागरूकता पैदा करते थे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने लोगों को अपने लेखों के माध्यम से स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया और उनके विचार जनमानस पर एक अमिट छाप छोड़ गए। उनकी कृतियों में से कुछ ये हैंः 'मिस्ट्री आफ सर स्टफोर्ड क्रिप्स', 'आस्पेक्ट्स आफ सोशलिस्ट पालिसी', 'इतिहास चक्र', 'विल पावर एंड अदर राइटिंग्स', 'भारत विभाजन के गुनहगार', 'मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म', 'इंडिया, चाइना एण्ड नादर्न फ्रंटियर्स', 'जाति प्रथा', 'फ्रैगमेंट्स आफ ए वर्ल्ड माइंड', 'भाषा', 'नोट्स एण्ड कमेंट्स', 'इंटरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स', 'फारेन पालिसी', 'कृष्ण, बाल्मीकि और वशिष्ठ', 'क्रांति के लिए संगठन', 'दी इंडियन एग्रीकल्चर', 'सोशलिज्म', 'हिन्दुइज्म', 'भारत और पाकिस्तान', 'हिन्दू और मुसलमान', 'समाजवादी एकता', 'निराशा के कर्तव्य', 'क्रांतिकरण', 'सरकारी', 'मठ और कुजात गांधीवादी'। वह 'मैनकाइंड' और 'जन' के सम्पादक मंडल के अध्यक्ष भी थे।

नए सिद्धान्तों के प्रतिपादक

मौलिक चिन्तक के रूप में उन्होंने निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किएः पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की द्वैत उत्पत्ति; छोटी मशीनों वाली ईकाइयां; समान अप्रासंगिकता; तीसरा कैप; तात्कालिता; वर्ग तथा जाति के बीच भटकाव; कार्यकुशलता, सम्पूर्ण या अधिकतम; मानवता का भौतिक तथा सांस्कृतिक सन्निकरण; निरन्तर सिविल नाफरमानी; सन्निकरण के साथ सह-अस्तित्व; सामान्य तथा आर्थिक उद्देश्यों और आत्मा एवं पदार्थ के स्वायत सम्बन्ध आन्तरिक विद्रोह और बाहरी आक्रमण के बीच विपर्यास सम्बन्ध; समान अवसर के स्थान पर पिछड़े वर्गों के लिए तरजीही तथा सात क्रांतियां ।

सांसद के

डॉ. लोहिया 1963 में तीसरी लोकसभा के लिए उत्तर प्रदेश के फरुर्खाबाद संसदीय क्षेत्र से उप चुनाव में निर्वाचित हुए। उन्होंने 13 अगस्त, 1963 को सदस्यता की शपथ ग्रहण की। पहले ही दिन जब लोहियाजी लोकसभा में आये तो ऐसा लगा कि सदन में नवजीवन का संचार हुआ हो। जब उन्होंने सभा भवन में प्रवेश किया, तो सदन में सभी सदस्यों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। पहली बार लोकसभा सदस्य बनने पर उनका रामलीला मैदान में नागरिक अभिनन्दन किया गया था। मार्च, 1967 में वह उत्तर प्रदेश के कन्नौज संसदीय क्षेत्र से चौथी लोकसभा के लिए फिर चुने गये। लोहियाजी एक समर्पित सांसद थे और उन्होंने सदन की कार्यवाही में बहुत रुचि ली। वह संसदीय वाद-विवाद तथा चचाओं के लिए पूरी तरह तैयार होकर आते थे। लोकसभा में उनके भाषणों ने भारतीय राजनीति को नया मोड़ दिया और सोच-विचार के लिए ठोस सामग्री प्रदान की। चाहे गुट निरपेक्ष नीति हो या देश में भ्रष्टाचार का मामला, लोहिया जी तत्कालीन सरकार को हमेशा आड़े हाथों लेते थे। सदन में अपने भाषणों के माध्यम से वह सरकारी नीतियों की त्रुटियों को उजागर करते थे। चाहे प्रधानमंत्री हों या अन्य कोई मंत्री, वे किसी को बख्शते नहीं थे। जब भी वह कोई अनियमितता या अन्याय होता देखते, तो तुरन्त उस मुद्दे को उठाने के लिए तत्पर रहते थे। 'तीन आने बनाम पन्द्रह आने' नामक वाद-विवाद में उनके तर्क देश की जनता को चौका देने वाले थे। लोहियाजी ने दृढ़तापूर्वक कहा कि तत्कालीन सरकार का यह कथन कि देश में प्रति व्यक्ति आय पन्द्रह आने है, गुमराह करने वाला तथा मिथ्या है। उन्होंने तथ्य तथा आकंड़े प्रस्तुत करके साबित किया कि उस समय प्रति व्यक्ति आय साढ़े तीन आने या चार आने प्रतिदिन थी। उनसे प्रेरणा पाकर 13 मार्च, 1964 को दिल्ली में उनके नेतृत्व में 'जनवाणी दिवस' मनाया गया। यह वास्तव में बड़े दुखः की बात है कि लोहियाजी का जीवनकाल बहुत कम रहा। मौलिक विचारक, अद्वितीय नेता, विख्यात सांसद और विद्रोही डॉ. लोहिया 12 अक्टूबर, 1967 को नई दिल्ली में 57 वर्ष की अल्पायु में चल बसे। उनके निधन की खबर जंगल की आग की तरह पूरे देश में फैल गई और पूरा देश शोक में डूब गया। संसद के दोनों सदनों में लोहियाजी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। उनके निधन को देश तथा संसद के लिए एक महान क्षति बताया गया। उन्हें सच्चे अर्थों में एक बहादुर योद्धा, महान विचारक और ओजस्वी व्यक्ति की संज्ञा दी गई। उनकी मृत्यु को असामयिक बताते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष डॉ.एन. संजीव रेड्डी ने कहा था कि उनकी मौत से भारतीय राजनीति तथा सदन से एक उत्कृष्ट नेता उठ गया है। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने लोहिया जी को एक अग्रणी सांसद बताते हुए कहा कि उनके असामयिक निधन से देश ने एक ओजस्वी और प्रतिभाशाली व्यक्ति खो दिया है। उनके शब्दों में लोहिया जी का सारा जीवन दलितों और शोषित लोगों के हितों के लिए, जो उन्हें प्रिय थे, एक संघर्ष था। यद्यपि वह राज्यसभा के कभी सदस्य नहीं रहे, फिर भी उस सदन ने भी उन्हें मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित की राज्यसभा के तत्कालीन सभापति स्वर्गीय श्री वी.वी. गिरि ने उन्हें देश में समाजवादी आन्दोलन का संस्थापक बताया और कहा कि लोकसभा के सदस्य की हैसियत से श्री लोहिया ने 'एक जोशीला वक्ता और उत्कृष्ट संसदविद् होने के नाते चिरस्थायी कीर्ति अर्जित की। उन्होंने आगे कहा 'यद्यपि डॉ. लोहिया सरकार की नीतियों की प्रायः पुरजोर आलोचना करते थे परन्तु उनकी नीयत और ईमानदारी पर कभी शंका नहीं हुई, उनके मन में हमेशा लोगों की भलाई ही रहा करती थी। डॉ. लोहिया अविवाहित थे। उन्होंने अपने पीछे न कोई परिवार और न ही कोई सम्पत्ति छोड़ी। वह केवल अपने महान आदर्श अपने पीछे छोड़ गए।

(लोकसभा द्वारा प्रकाशित सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज से साभार।)

■

धर्मवीर भारती

समता+स्वातन्त्र्य+सौन्दर्य = लोहिया

लोहियाजी से मेरी मुलाकात का किस्सा कम दिलचस्प नहीं है। जितेन्द्र सिंह ने उनसे मिलने का दिन और समय निश्चित किया था। शनिवार को सुबह 8 बजे। जहां वे थे, वह जगह 18-19 किलोमीटर दूर थी, यानी कम-से-कम 1 घण्टा तो लग ही जायेगा। तड़के सुबह हम चार पांच लेखक मित्र उठे, तैयार हुए, साइकिलों की जांच-पड़ताल की, हवा भरवायी। एक अदद इक्का, एक अदद रिक्शा और दो अदद साइकिलों पर हिन्दी का उस समय का तरुण साहित्य लदकर लोहिया से मिलने चल पड़ा।

मिलने की जगह भी अनोखी थी। वे उस समय नेहरू सरकार के मेहमान हो कर नैनी जेल में डेरा डाले हुए थे। उनके कुछ वक्तव्यों और भाषणों के कारण उन पर मुकदमा चलाया गया था। स्वतन्त्र भारत की वह विलक्षण घटना थी जब गांधीजी और अहिंसा का नाम लेनेवाली सरकार एक चोटी के देशभक्त को जेल में डालने पर आमादा थी। जहां तक मुझे याद है उस मुकदमे में लोहियाजी ने कोई वकील नहीं किया था, खुद बहस की थी और उनकी वह बहस हम तमाम युवकों में एक नयी उमंग जगा गयी थी, एक नयी दृष्टि दे गयी थी।

वैसे हम सब, नये साहित्यिक जागरण का झण्डा उठाये काफी टेढ़े किस्म के बुद्धिजीवी थे। आसानी से किसी से प्रभावित होना हमें मंजूर नहीं था, आपस में भी झगड़ते रहते थे। हममें से कुछ नेहरू के प्रशंसक थे, कुछ जयप्रकाश के कुछ विनोबा के, कुछ सुभाष बोस के, लेकिन अकस्मात हम सबका मन लोहिया ने जीत लिया था। न हमने उन्हें तब तक देखा था, न उनकी सभाओं में गये थे। पर अब हम उनसे मिलने को उत्सुक थे।

जमुनाजी के लम्बे फौलादी लाल पुल पर से हमारा इक्का, रिक्शा और साइकिलों का साहित्यिक कारवां गुजर रहा था। मैं सोच रहा था कैसी होगी जेल की कोठरी? कैसे बन्द होंगे उसमें लोहियाजी ? यह वही नैनी जेल है, जहां पं. नेहरू, मौलाना आजाद, सम्पूर्णानन्द, और रफी अहमद किदवई को अंग्रेजों ने बन्द किया था, जिसके बारे में नेहरू ने विस्तार से बड़े काव्यात्मक ढंग से अपनी आत्मकथा में लिखा था। उस कवि-हृदय नेहरू ने आज अपने इस प्रिय मित्र को नैनी जेल में कैसे बन्द कर रखा है? ऊंची धूल धूसरित ईंटों की दीवारें, लोहे के दैत्याकार जंगलों वाले फाटक को पार कर अब हम कैदियों के वार्डों से गुजर रहे थे। धारीदार पोशाक पहने, मिट्टी गोड़ते, फावड़े चलाते कैदी कभी-कभी कुतूहल से हमें देख लेते थे। साथ के वार्डर ने उन्हें बताया कि हम डॉक्टर साहब से मिलने आये हैं। वे सलाम करके अपने काम में लग जाते। डॉक्टर साहब से उनकी दोस्ती कायम हो चुकी थी।

प्रथम भेंट

एक खुले खुले बरामदे में खिड़कियोंवाला एक कमरा, दरवाजा खुला। अन्दर एक तख्त पर कम्बल, कम्बल पर चादर और तकिया, तकिये पर कुहनी रखे खादी के कुर्ते-धोती में डॉ. लोहिया। सांवला चेहरा, छोटी पर तीखी आंखें, बाल कुछ विद्रोही जैसे, मोटे होठों पर एक चिरन्तन मुस्कराहट और प्रश्नाकुलता का-सा भाव। परिचय हुआ, हरेक को

डॉ. राममनोहर लोहिया (23-03-1910- 12-10-1967)

उन्होंने यही आभास दिया। जैसे हम सब बड़े महत्त्वपूर्ण लोग हैं। इस देश की जनता को हम जैसे लेखक और कवि ही जगा सकते हैं। किसी और स्थिति में शायद हम घमण्ड से फूल जाते। लेकिन कुछ अजीब जादू लगा इस व्यक्ति के शब्दों में कि हम एक नयी जिम्मेवारी की चेतना से भर उठे कि हमें सचमुच कुछ करना है। हमारे व्यक्तित्व और इस दबे-कुचले भारतीय जन-मानस के बीच कोई द्वार बन्द था, जो इस व्यक्ति के सम्मोहक शब्दों से अकस्मात खुलने लगा है।

उन्होंने राजनीति की कोई बात नहीं की, नेहरू की कोई बात नहीं की, मुकदमे की कोई बात नहीं की, सोशलिस्ट पार्टी की कोई बात नहीं की, कविता के बारे में बातें कीं, उपन्यासों के बारे में बातें कीं, साहित्य की भाषा के बारे में बातें कीं, हमारे घर-परिवार के बारे में बातें कीं और हम चकित थे कि साहित्य, भाषा, मानवीय पीड़ा के बारे में इस व्यक्ति के पास एक बिलकुल अलग-सा नजरिया है, इतिहास की पैठ बिलकुल मौलिक है, और संस्कृति के अन्तर्विरोधों को समझने की संवेदना तो ऐसी पैनी है कि अगर लोहिया साहित्य की समीक्षा लिखने लगें तो बड़े-से-बड़े आचार्य की छुट्टी हो जाये। सबसे विचित्र बात यह कि जिस अतिसामान्य, रोजमर्रा के गली-मुहल्ले, गांव-चौपाल की भाषा के शब्द हम संक्षिप्त में छाप जाते हैं, उन्हीं का धाराप्रवाह इस्तेमाल करते हुए वे कितनी गहरी से कह रहे हैं।

और इतने में नाटकीय प्रवेश हुआ एक और व्यक्ति का-

काला रंग, लहीम-शहीम काया, बड़ी-बड़ी मूंछें, भयावना रोबीला चेहरा, हाथ में मूठदार मोटा बेंत। हम थोड़े हक्का-बक्का थे। दो कैदियों ने दौड़कर एक कुर्सी रखी। वे उस पर हांफते हुए से बैठ गये। हमारी हालत को थोड़ी शरारत भरी दृष्टि से देखकर डॉक्टर साहब ने परिचय कराया, "डरने की बात नहीं है भाई, ये हमारे असिस्टेण्ट जेलर साहब बड़े भले आदमी हैं। इन्हें सिर्फ जेलर मत समझिएगा, ये भी लेखक हैं। अच्छी कहानियां लिखते हैं। भीम शंकर 'परवाना' नाम से लिखते हैं।" परवाना साहब की मूंछें फड़कीं, वेंत हाथ में लिये ही लिये उन्होंने हम लोगों को समवेत नमस्कार किया। डॉक्टर साहब फिर बोले, "भाई, तुम लोगों की पत्रिकाओं में इनकी कहानियों नहीं आतीं, पर इनके भी पाठक हैं। मैं ही तीन-चार दिन से इनका पाठक हूं इनकी कई कहानियां पढ़ डालीं।" और वे जिस उत्साह व जिस आत्मीयता से हमारे साहित्य के बारे में बात कर रहे थे उसी उमंग से जेलर और कैदी का क्या सम्बन्ध है, उसमें साहित्य की कैसी अछूती अनुभूतियां मिल सकती हैं, इस पर बातें करने लगे। परवाना साहब ने पहले डॉक्टर साहब की प्रशंसा से हम लोगों की ओर देखकर छाती फुलाई, गर्दन तानी, फिर डॉक्टर साहब की ओर प्रशंसा और कृतज्ञ भाव से देखते हुए श्रद्धानत होकर बैठ गये । अब कैदी, गुरु भाव से मार्ग-दर्शन कर रहा था और जेलर शिष्य भाव से चरणों में नत बैठा था।

समता

मैं अनेक बार बड़े राजनेताओं से मिला हूं- नेहरूजी से, राजगोपालाचारी से, राष्ट्रपति सुकार्णो से, राष्ट्रपति डॉ. लियापोल्ड सेंगोर से, शेख मुजीव से प्रभावित हुआ हूं, अभिभूत हुआ हूं, पर लोहियाजी से मिलने के बाद की जो अनुभूति थी वह बड़ी अजीब थी। मैं अपने आप में जैसे सहज हो आया था, जैसे लगा था कि किसी चीज को कभी इतना बड़ा नहीं माना कि उसके सामने तुम्हारा छोटापन तुम्हें कचोटने लगे, एक निर्भयता का भाव। मेरी प्रिय पुस्तक 'वाणभट्ट की आत्मकथा' में एक जगह कहा गया है—कसी से भी डरो मत, शास्त्र से भी नहीं, गुरु से भी नहीं ?" कुछ वैसी ही सहज निर्भीकता जाग गयी थी अनजाने ही लोहिया से मिलने के बाद, और वह बढ़ती ही गयी उनका साहित्य पढ़ने के बाद, और बाद में उनसे जीवन में अनेक बार मिलने के बाद।

लेकिन उनकी दी हुई यह निर्भीकता उद्दण्डता, उच्छृंखलता या अनियन्त्रित अहंकारिता में परिवर्तित न हो, इसका सूत्र उनकी सुकुमार संवदेना से मिलता था, जहां यह व्यंजित होता था कि अगर तुम किसी से छोटे नहीं हो, तो याद रखो, कोई तुमसे भी छोटा नहीं है। हर व्यक्ति, जिसे तुम छोटा-से-छोटा, त्याज्य-से-त्याज्य मानते हो उसकी भी कहीं अस्मिता है, सार्थकता है। उससे, उसी विन्दु पर जुड़ो क्योंकि कहीं, तुम और वह एक हो।

समता के दर्शन का यह दूसरा ही स्तर था। सिर्फ सम्पत्ति के बराबर बंटवारे से बंटना था, वैषम्य मिटाने के लिए समाज ही नहीं बदलना था, शासन पद्धति ही नहीं बदलनी थी, पहले अपने मन को बदलना था। दल को क्रान्तिकारी बनाने के पहले अपने चरित्र को क्रान्तिकारी बनाना था। यह क्रान्ति अन्दर से बाहर की ओर भी गतिशील होनी थी, और बाहर से अन्दर की ओर भी। तभी तो मानवीय पीड़ा को समझा जा सकेगा, बंटाया जा सकेगा।

उन दिनों मैं कैशोर्य के दायरे में था, तीखी उत्तेजनापूर्ण बातें अच्छी लगती थीं। गांधी दर्शन कुछ बड़ा वायवीय नजर आता था। शुरू में अचरज हुआ कि लोहिया नेहरू से दूर और गांधी के निकट अपने को क्यों मानते हैं। जिन्दगी के ऊंचे-नीचे झटके लगने के बाद, राजनीति के उत्थान-पतन देखने के बाद, अनेक पीड़ाजनक स्थितियों से गुजरने के बाद, शत्रुओं से मिली करुणा और मित्रों से मिले विश्वासघातों के बाद जब मन थिराया, पककर प्रौढ़ हुआ, तब समझा गांधीजी का प्रिय गीत "वैष्णव जन तो तेणें कहिये जे पीर पराई जाणे रे !" और तब जाना कि परायी पीर जानने के उस वैष्णव सूत्र से लोहिया कितने गहरे जुड़े थे। उनकी समता का दर्शन पूरी भारतीय मनीषा के शुभ्र उत्तराधिकारी की आधुनिक व्याख्या थी। नेहरू ने भारत की खोज की थी, डॉ. लोहिया भारत से एकाकार थे। यही दोनों में बुनियादी अन्तर था।

स्वातन्त्र्य

और तभी, उसके बाद ही हमने स्वतन्त्रता के मूल्य को नये-नये सन्दर्भों में समझना शुरू किया- केवल ब्रिटिश उपनिवेशवाद से ही स्वतन्त्रता नहीं, उन तमाम चीजों की गुलामी से मुक्त होना, जो मनुष्य की सहज मनुष्यता को कुण्ठित करती है। हम व्यक्ति की अस्मिता को मिटा कर सामाजिक समता नहीं ला सकते, हर व्यक्ति को उसकी अस्मिता और सार्थकता का सहज परिवेश देकर ही समता ला सकते हैं।

वे पांचवें दशक के वर्ष थे, जब इलाहाबाद नयी साहित्यिक रचना-धाराओं का केन्द्र था तथा समता और स्वतन्त्रता, व्यक्ति और तन्त्र, स्वातन्त्र्य और दायित्व की जो घनघोर बहस उन दिनों 'प्रगतिशील लेखक संघ' और 'परिमल' में चली, उसके पीछे लोहिया चिन्तन का आधार कितना प्रवल था, इसका अभी तक साहित्य के इतिहास में समुचित आकलन नहीं हुआ। विचित्र बात यह है कि लोहियाजी स्वयं कभी परिमल की गोष्ठी में नहीं आये, उनसे मिलना-जुलना भी कभी नाममात्र का होता था। कभी-कदा 'जन' के सिलसिले में कोई चिट्ठी-पत्री हो जाय तो बात अलग, पर हम सब क्या लिख रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, इसकी खोज-खबर वे पता नहीं कैसे रखते थे, पर कभी सलाह या दिशा देने की गलती उन्होंने नहीं की। 'गुरुडम' नाम की चीज उन्हें कहीं छू नहीं गयी थी, फिर भी उन्होंने लेखकों की एक पूरी पीढ़ी खड़ी कर दी थी जो अपनी बात तनकर कहती थी, निष्ठा से कहती थी। उन्होंने हमें रास्ता नहीं दिखाया था। उन्होंने सिर्फ हमारे उस व्यक्तित्व को जगा दिया था, जो हर रहस्याच्छादित अविवेक से आक्रान्त होने के बजाय उसे प्रश्नों से बींध डालने को आतुर रहता था, जो बने बनाये उधार के दर्शन को न ओढ़ कर अपनी-अपनी विवेक बुद्धि से अपनी नियति के साक्षात्कार के लिए सन्नद्ध था, जो बनी-बनायी पगडण्डियां छोड़कर झाड़-झंखाड़ में अपना-अपना रास्ता ढूंढ़ने का साहसी था। उस पीढ़ी के लेखकों में जब तक और जिसमें स्वातन्त्र्य का यह साहस रहा, दूसरे की पीर को समझने की करुणा रही तब तक उसमें तेजस्विता रही। जब वे खुद अपने बनाये प्रभा-मण्डलों के गुलाम होने लगे तब वे धुंधले पड़ने लगे, बुझने लगे।

एक बार वे सीधे इलाहाबाद से लौटकर वम्बई आये काशीनाथजी उनके साथ थे। बात इलाहाबाद की चल पड़ी। बोले, "काफी हाउस में मित्रों से मिलकर आया हूं। जाने क्या बातें करते हैं। वुझे हुए दियों से कब तक त्यौहार मनायेंगे ?"

लेकिन यह बाद की बात है। जब मैं इलाहाबाद से वम्बई आ गया, तब उनसे बम्बई में जो पहली भेंट हुई, वह भी भूल नहीं सकता। शायद वे मेरे लिए चिन्तित थे, मेरा पहला पारिवारिक गठन टूट चुका था और एक झूठी पड़ी हुई स्थिति से समझौता न कर जीवन को नये और ज्यादा सहज ढंग से शुरू करने का जो कदम मैंने उठाया था, वह इलाहाबाद

के अनेक मित्रों को नापसन्द था। 'धर्मयुग' का सम्पादन मैंने क्यों लिया, इस पर भी तरह-तरह की टीका-टिप्पणी चल रही थी। मुझे स्वप्न में भी अन्दाज नहीं हो सकता था कि घर-परिवार की जिम्मेवारियों से मुक्त बहुत बड़ी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में उलझे हुए डॉ. लोहिया मेरे व्यक्तिगत जीवन जैसी छोटी-सी चीज में दिलचस्पी ले सकते हैं।

तब मैं वामनजी पेटिट रोड पर रहता था। तीसरे पहर फोन आया कि डॉ. लोहिया आये हुए हैं, आपको खबर नहीं दे पाये। शाम को 6 बजे की गाड़ी से जा रहे हैं। मिलने स्टेशन आ जाइये। परिवार (पुष्पा जी) को लेकर आइयेगा।

हम पहुंचे, गाड़ी लग चुकी थी, प्लेटफार्म पर जार्ज कुली से सामान रखवा रहे थे। डॉक्टर साहब सीट पर बैठे थे। जैसे उन्होंने पास बिठाया, जो बातें कीं, वह हमारे उन सघर्ष के दिनों में कितना बड़ा सहारा बनीं, यह क्या कभी शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है? हम दोनों उस लांछना और कलुष के अभियान के बीच जो पीड़ा भुगत रहे थे उसको पता नहीं कैसे उन्होंने महसूस कर लिया था, पर हमारे स्वाभिमान को कहीं ठेस न लगे, अतः इसके बारे में एक शब्द न कह कर भी उन्होंने उस शाम के अपने व्यवहार से हमें फिर तन कर जीने का बल दे दिया था।

उसके बाद से आत्मीयता का सूत्र जैसे और गाढ़ा हो गया। दिल्ली, हैदराबाद, लखनऊ तो उनके कार्य-स्थल थे, पर बम्बई उनके लिए कार्य-स्थल के साथ-साथ विश्राम स्थल भी था। मुझे हमेशा लगा कि बम्बई आकर जार्ज, मधु, मृणाल, दिनकर, साक्रीकर, इन्दुमती केलकर जी के बीच वे एक अजीब-सी राहत महसूस करते थे। दिल्ली के राजनीतिक छल-कपट और साहित्यिक उकटा- पैची से दूर, बम्बई की उदार, मुक्त मानसिकता, अन्दरूनी और बाहरी साफ-सुथरापन, कामकाज में लगे लोग, लहराता सागर और केसरिया सूर्यास्त उन्हें काफी राहत देता था और बम्बई आकर जब वे राजनीतिक काम-धाम से फुर्सत पा लेते थे तो अकसर काफी के प्याले पर आत्मीयों को याद करते थे।

चर्चगेट का बाम्बेली (जो अब बन्द हो गया) उनका एक प्रिय अड्डा था। दफ्तर से उनका फोन मिला और मैं नियत समय पर वाम्बेली पहुंच गया। इन्दुमती केलकर (उनकी जीवनीकार) से उस दिन परिचय हुआ। एक राज्य में नयी सरकार में सोशलिस्ट मुख्यमन्त्री बना था। मैंने बधाई दी तो झिड़कते हुए बोले- "जल्दबाजी क्या है? कुछ दिन बाद बधाई देना। अब तक कांग्रेस से लड़ता रहा हूं, अब लगता है, कांग्रेस और अपनी पार्टी के सत्तारूढ़ अंग से एक साथ लड़ना पड़ेगा।"

वे उस दिन उदास थे। सत्ता समक्ष आने पर क्या सभी मूल्य बचे रहेंगे, आशंका व्याप्त हो रही थी शायद। कैसा खरा था वह आदमी? उसे असफलता तोड़ नहीं पायी थी। सफलता उसे छल नहीं पा रही थी। हम सब जो अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं, कभी-कभी तनाव, द्विविधा, अन्तःसंघर्ष के गहन द्वन्द्व के क्षणों में कुछ प्रवंचनाओं में जीने लगते हैं, अपने ही बनाये शब्दों के घटाटोपों में शरण लेने लगते हैं, लेकिन वे ऐसे थे कि अपने विवेक को कभी मूर्च्छित नहीं होने देते थे। अपने ही बनाये हुए घरौंदों को मिस्मार कर सकते थे, अगर उन्हें लगे कि इसकी दीवारें भी कारागार बनने लगी हैं। स्वतन्त्रता का कैसा विचित्र वेग था उनमें।

जो उनके वक्तव्यों या निर्णयों को केवल सतही तौर पर देखते, समझते थे, उन्हें उनका यह रुख पूर्ण नकारात्मक लगता था, और खासतौर से अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी जेहनियत का जो छद्म बुद्धिजीवी वर्ग देश पर उस समय छाया हुआ था। (और अब तक छाया हुआ है) उसके लिए। इसलिए लोहिया हमेशा पहेली बने रहे। अंग्रेजी अखबारों ने लोहिया के साथ जितना अन्याय किया है, जितना गन्दा शरारतपूर्ण प्रचार करके उनकी गलत तस्वीर देश की पढ़ी-लिखी जनता के सामने उभारने की कोशिश की है, उसकी मिसाल मिलनी मुश्किल है। बात सिर्फ इतनी थी कि अनेक समझौते कर के सतही तौर पर देश की नियति से संलग्न होकर, "पश्चिम में हमारी तस्वीर उजली बनी रहे, घर में चाहे जो कुछ दुर्दशा रहे" वाली गुलामी की जो अवशेष जेहनियत नेहरू युग की विशेषता थी, लोहिया उसमें खप नहीं पाते थे। वे बुनियादी परिवर्तन चाहते थे ऊपरी टीपकारी नहीं, और मुखौटे ओढ़ने से तो उन्हें सख्त नफरत थी। उनके बेवाक चिन्तन के आईने में हर अंग्रेजीपरस्त को अपने मुखौटे का भांडापन दीखता था, इसलिए वह चिढ़कर उस आईने पर कीचड़ फेंकता था। लोहिया के प्रति उनका गुस्सा असल में अपने मुखौटों की कुरूपता के प्रति गुस्सा था। लेकिन वह अपने मुखौटों को उतार नहीं पाता था इसलिए उनके चिन्तन और व्यक्तित्व को लोगों की नजरों में गिराने का दुष्टतापूर्ण प्रयास करता था ।

उनका जो सबसे अलग रुख था - हर समस्या को मूलभूत मानवीय तत्त्व की कसौटी पर परखनेवाला, गांव-कस्बे के छोटे-से-छोटे व्यक्ति के हित को अन्तिम लक्ष्य मानने वाला- वह उन लोगों की समझ में कैसे आ सकता है जो इस देश के 2 प्रतिशत अंग्रेजी शिक्षित अभिजात वर्ग के ही हित को देश का हित मानता है, उन्हीं की उन्नति को देश की उन्नति मानता है? संसद में आने के बाद लोहियाजी ने इस वर्ग और इसके नेताओं का ऊपरी आवरण उधेड़ कर जब दिखाया कि अन्दर कितना भूसा भरा है, तब इनकी जवान पर थोड़ी लगाम लगी। जनता सरकार बनने के बाद फिर इन अंग्रेजी पत्रकारों, लेखकों, शिक्षाविदों ने जिस तरह भारतीयता और देशी भाषाओं के खिलाफ खुली साजिश करनी शुरू की-काश उस समय कोई लोहिया की तेजस्विता से इन्हें मुंहतोड़ जवाब दे पाता !

लेकिन इस वेवाक बयानी लिए उन्हें सिर्फ अंग्रेजीवाले ही नहीं, बल्कि कुछ हिन्दीवालों से भी मुठभेड़ लेनी पड़ी है। उनके लिए भाषा का सवाल सिर्फ राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं, पाठ्यक्रमों, सरकारी अनुदानों और प्रचार संगठनों का सवाल नहीं था। उनके लिए भाषा का सवाल इस देश के दबे हुए पिछड़े लोगों की मानसिकता और सृजनात्मकता की मुक्ति का सवाल था। जब नासमझी में कुछ हिन्दीवाले इसे बुनियादी सन्दर्भ से अलग कर देते थे तो भी डॉ. लोहिया को बर्दाश्त नहीं होता था। संसद में इस सवाल को लेकर सेठ गोविन्द दास से उनकी गहरी झड़प हो गयी थी। काफी कड़वी वातें दोनों ने एक-दूसरे को कहीं और अंग्रेजी अखबारों को फिर अपनी शरारत दोहराने का मौका मिल गया। सेठ गोविन्द दास की हिन्दी निष्ठा में कहीं किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं थी राजभाषा-संशोधन विधेयक के समय उन्होंने नेहरूजी और अपनी कांग्रेस पार्टी के अनुशासन का उल्लघंन कर विधेयक के विरुद्ध वोट दिया था। लेकिन, सेठ गोविन्द दास के इर्द-गिर्द जरूर कुछ ऐसे निहित स्वार्थी हिन्दीवाले थे, जो हिन्दी को केवल अपनी पद-प्रतिष्ठा का साधन बनाये हुए थे, जिनकी नीतियां और कारनामे हिन्दी के नाम पर हिन्दी को अन्ततोगत्वा नुकसान पहुंचानेवाले थे।

संसद में दोनों की पारस्परिक कटुभाषिता के बाद सेठ गोविन्द दास बम्बई आये और मुलाकात हुई तो मैंने उन्हें विनम्रतापूर्वक बताया कि डॉ. लोहिया के प्रति आपने जो संसद में कहा, वह उचित नहीं था। सेठजी बेचारे बहुत सीधे आदमी थे, कहने लगे-"मैं तो उनका बहुत

आदर करता हूं, पर वे मुझ पर बहुत कड़वे आक्षेप करने लगे तो मैं क्या करूं ?"

लेकिन जब बहुत विनम्रतापूर्वक और बहुत स्पष्ट ढंग से आधे घण्टे तक मैंने उन्हें बताया कि उनके नाम और प्रतिष्ठा की आड़ लेकर हिन्दी के कौन-कौन से आचार्य, कौन-कौन से मठाधीश कैसे-कैसे अपना मतलब साध रहे हैं, तो गोविन्द दासजी सच्चे मन से व्यथित नजर आये। वोले- "मैं दिल्ली जाकर उनसे खुद बात करूंगा।" पता नहीं, दिल्ली जाकर उन दोनों में क्या बात हुई, पर उसके बाद उन्होंने बात से क्षुब्ध थे कि हिन्दी के नये साहित्यकारों में लोहियाजी की इतनी प्रतिष्ठा क्यों लोहियाजी का अनुचित विरोध नहीं किया। बाद में पता चला कि कुछ आचार्य है और उन्होंने सीधे-सादे गोविन्द दासजी को भड़का दिया था।

नकारात्मकता और निषेध को ही लोहियाजी की मूल प्रवृत्ति मान लेने की गलती अंग्रेजीवालों ने ही की हो, यह बात नहीं है। हिन्दीवालों में भी अंग्रेजी की चमक-दमक से आक्रान्त और कहीं पर वह सब पाने के लोभी और न पा सकने से कुण्ठित लेखक पत्रकार रहे हैं, जो लोहियाजी के मूर्ति-भंजक रूप के कारण ही उनके साथ हो लिये थे। लोहिया के प्रति उनकी तथा कथित आस्था सिर्फ तात्कालिक थी, वह अपने चरित्र में वह बुनियादी परिर्वतन और समता तथा स्वातन्त्र्य की सकारात्मक दृष्टि नहीं विकसित कर पाये थे, इसका प्रमाण उनके बाद के व्यवहार ने दिया। उनमें से एक, जो एक जमाने में लोहिया की जयकार करते नहीं थकते थे, उनकी परिणति यशपाल कपूर के साहित्यिक प्रवक्ता बन जाने में हुई और दूसरे ने जिस तरह सम्पूर्ण क्रान्ति का प्रदर्शनपूर्ण समर्थन और बाद में उतनी ही तत्परता से उसका खण्डन किया, वह अपने में हास्यास्पद और दयनीय प्रकरण बन गया। यह नकारात्मकता एक झूठा दम्भ और हर दूसरे को नीची निगाह से देखने का अस्वस्थ दृष्टिकोण भी जगाती है, जो वस्तुतः लोहिया के समता-दर्शन के बिलकुल विपरीत है।

सौन्दर्य

समता और स्वातन्त्र्य के साथ एक तीसरा तत्त्व है, जिसके बिना लोहिया के व्यक्तित्व को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता है। वह है- सौन्दर्य! पर सौन्दर्य बाहरी रूपाकारों के प्रलोभनकारीह आकर्षण का पर्याय नहीं, वरन वह, जहां किसी भी व्यक्ति, जाति, इतिहास, कला-चेतना की आन्तरिक सहज ऊर्जा अपने स्वाभाविक सामंजस्य में अभिव्यक्ति पाती हो, उस सौन्दर्य को उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्णता से आंक लेती थी और वे उसमें विभोर हो उठते थे।

'जन' में भारतीय प्रस्तर - स्थापत्य और मूर्तिकला पर उनकी एक लेखमाला निकली थी। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि कला सौन्दर्य के प्रति उतनी मौलिक पहचान और व्याख्या अभी तक कोई जाना-माना कला-समीक्षक भी नहीं दे पाया है। जब वे पुराणों की ओर चले तो कृष्ण, राम, शिव, सीता, द्रौपदी, विश्वामित्र के चरित्रों के अन्तर्निहित सौन्दर्य संस्कार को उन्होंने जिस तरह व्याख्यायित किया, वह अपने में अनूठा है। पर यह दृष्टि केवल पत्थरों पर उत्कीर्ण या शब्दों में अंकित आकारों तक सीमित नहीं, प्रतिक्षण सामने घटित होनेवाले जीवन चक्र के सुन्दर क्षणों, स्थितियों, अभिव्यक्तियों को वे जैसे ग्रहण कर लेते थे, उसका तो दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है। और वे उसे जीते थे जब भी अवसर मिले।

उस समय जुहू में न इतने बड़े-बड़े होटल थे और न इतनी भीड़-भाड़ हुआ करती थी। केवल एक जुहू होटल था, जहां कुछ पुराने ढंग के लताच्छादित अलग-अलग सूट थे-बहुत शान्त। इस बार वे दिल्ली से चुपचाप सिर्फ आराम करने के लिए आये थे। जुहू होटल से फोन आया कि शाम को आ जाओ। फुर्सत कर घण्टे, चार घण्टे। काम ? कुछ नहीं, सिर्फ रेत पर उस दिन वे अद्भुत मूड में थे। पहले कमरे में बैठे और बराबर तीखे मजाकों से हरेक को छेड़ते रहे। फिर चाय का वक्त आया तो उठे और समुद्र तट की ओर जुहू होटल के आंगन में कुर्सियां डालकर खुले आसमान तले चाय मंगवायी गयी। सूरज टलने लगा था। बात रामायण मेले से शुरू हुई और अकस्मात वे बोले-"पता नहीं राम ने कभी सागर पर सूर्यास्त देखा या नहीं। रामेश्वरम् तो पूर्वी तट पर था ।" तो द्वीप है वहां तो सूर्यास्त, सूर्योदय दोनों देख सकते होंगे? पर

"जरा घर जाकर वाल्मीकि रामायण देखना और सूर्यास्त का वर्णन कहीं है क्या ? सुन्दरता में कुछ करुणा का पुट होता है तभी उदात्त होती है। सूर्योदय में चुहल है, वेग है, सूर्यास्त में करुणा है, सौम्यता है, जैसे रस से पक गया हो ! और फिर जो बातें चलीं कि उनका अन्त नहीं। जब सूर्य के गोले का निचला छोर जल- क्षितिज को छूने लगा तो वे उठे और नीचे उतर कर सागर की रेत पर बैठ गये, धरती का स्पर्श जरूरी होता है, सिर्फ मुहावरे में नहीं, सचमुच, मां की तरह सहेज लेती है, इसकी गोद में बैठो तो ! सहसा उनकी आंखों में चमक आयीझशरारत से बोले - "तुम्हारी कुर्सी तो बहुत ऊंची है डॉक्टर ! पर यह रेत उससे ज्यादा ऊंची है, इसे कभी नहीं भूलोगे तो ठीक काम करते रहोगे। इसे समझता था, तभी जनक विदेह बनकर बैठता था सिंहासन पर हमारे राजा जनक इसे भूल गये !" पर इस छेड़छाड़ से वे फिर मुड़ गये राजऋषि वशिष्ठ और जन-मनीषी विश्वामित्र पर, और फिर काले गोरे पर, रूप-सौन्दर्य के बदलते प्रतिमानों पर और फिर सौन्दर्य-बोध के विराट् दायरे में क्या नहीं आया ? फसल काटती किसान-वधू, मशीन के चक्के पर कामगार की पुष्ट बांह की मछलियां, पालने की ओर निहारती मां की आंखें, खजुराहो का शिल्प, कांगड़ा कलम की नायिकाएं, लाहौर किले जेल के, हरिण शावकों की आँखें, द्रौपदी कृष्ण का सख्य भाव, अवधी लोकगीतों में कँगना और कागा, अजन्ता गुफाओं के निकट बहती नदी का कटाव और समुद्र पर घिरता अंधेरा और फिर बात हिमालय और समुद्र के सौन्दर्य की तुलना पर आकर टिक गयी। मैं उन्हें दीघा के समुद्रतट के संस्मरण सुना रहा था और वे चित्रकूट के गिरिवनों और मन्दाकिनी के घाटों की...

मैंने दक्षिण नहीं घूमा है। उन्होंने कहा कि इस बार वे दक्षिण जायेंगे, तो मुझे अवसर देंगे कि उनके साथ जाकर उनकी दृष्टि से पुराने मन्दिरों का स्थापत्य समझ सकूं... पर फिर वह दिन नहीं आ सका। वे दिल्ली गये, बीमार पड़े और एक दिन सूर्यास्त का समाचार सारे देश को व्यथित कर गया।

वह अन्तिम बार था, जब ऐसी शाम बीती थी। समता, स्वातन्त्र्य और सौन्दर्य के त्रिविध आयामोंवाला उनका यह व्यक्तित्व, सम्पूर्णता की सम्पूर्ण भाव से जीने की उमंगवाला वह व्यक्तित्व, अपने सांवलेपन में कभी-कभी त्रिभंगी कृष्ण की छवि क्यों मारता था, यह मैं अक्सर सोचा करता हूं।

(धर्मवीर भारती ग्रन्थावनी-6 से साभार)

■

प्रकाश चंद्रायन

एक बार लोहिया को देखा-सुना था

प्रसंग 1964 का है।मुंगेर संसदीय क्षेत्र का उपचुनाव हो रहा था। कांग्रेस के लोकसभा सदस्य की मृत्यु से स्थान रिक्त था। कांग्रेस के शिवनंदन भगत के मुकाबले संसोपा के मधु लिमये प्रत्याशी थे। रोचक संघर्ष को बाहरी बनाम स्थानीय रंग भी कांग्रेस दे रही थी। एक ओर संसाधन और सत्ता संपन्न कांग्रेस तो दूसरी ओर अल्प साधन, लेकिन प्रतिबद्ध कार्यकताओं से लैस संसोपा। लाल टोपी और लाल झंडे से सजे कार्यकर्ता फैल गए थे और अपने निम्न और निम्नमध्यवर्गीय आधारों को एकजुट कर रहे थे। मध्यवर्ग का कांग्रेस से मोहभंग अपेक्षाकृत कम था। उच्च तबका अधिकतम कांग्रेस के साथ ही था। चुनाव अभियान चरम पर था। प्रचार के अंतिम चरण में एक ही दिन कांग्रेस और संसोपा की जनसभा मुंगेर शहर में आयोजित थी। भव्य नगर भवन के मैदान में कांग्रेस का तिरंगायुक्त आकर्षक मंच सजा था और बगल के साधारण रामलीला मैदान में दो चौकियों पर एक चौकी रखकर एक लाल झंडा लगा संसोपा का कामचलाऊ मंच बना था। चार से छह बजे शाम तक कांग्रेस और छह से आठ तक संसोपा की सभा निर्धारित थी। पूरे तामझाम के साथ समस्त बिहार मंत्रिमंडल तत्कालीन मुख्यमंत्री कृष्णवल्लभ सहाय के नेतृत्व में मौजूद था। संसोपा के मंच पर कपिलदेव सिंह और मधु लिमए थे।नगर भवन का मैदान जनता से भरा था। उस समय जनता नेताओं को सुनने खुद आती थी लाई नहीं जाती थी। भरोसा बना हुआ था। एक-एक कर मंत्रिगण संबोधित कर रहे थे।तय समय हो गया था फिर भी भाषण जारी था। छह बजते ही समाजवादी नेता कपिलदेव सिंह ने कहा कि हमारा समय हो गया है और हम अपनी सभा शुरू करते हैं, इतना सुनते ही मंत्रियों के भाषणों से उबी जनता रामलीला मैदान की ओर चली गई। यह देख मंत्रियों ने सभा समाप्त कर दी। कपिलदेव सिंह थोड़ी देर बोले।इसके बाद मधु लिमए बोले कि बतौर सांसद उनका संसदीय कर्तव्य क्या होगा। वे लोकसभा में किन-किन विषयों को रखेंगे। राष्ट्रीय समस्याएं और चुनौतियां क्या हैं। उनका भाषण लोकलुभावन नहीं था, लोकशिक्षण का था। उन्होंने साफ कहा कि वे उनकी पैरवी नहीं करेंगे, सिर्फ नीतिगत मसले उठाएंगे। ऐसी हिम्मत आज कोई सांसद शायद ही करे। संयोगवश बिहार से चार बार सांसद चुने गए मधु लिमए का जन्मशती वर्ष 2022 ही है।उनके भाषण के बीच राममनोहर लोहिया कहीं क्षेत्र से प्रचार करते हुए देर से आय। सभा उनके लिए ही आयोजित थी। उनकी तबीयत नासाज थी, फिर भी जनता उनको सुनती रही। वे एक घंटा धाराप्रवाह बोले। अर्थव्यवस्था जैसे गंभीर और जटिल विषय को उन्होंने सरलता से रखा। श्रोता धैर्यपूर्वक सुनते रहे। राजनीतिक और योजनाओं की स्थिति को भी आसान तरीके से रखा। संसोपा की सप्तक्रांति को भी समझाया। आज कोई वैसे संबोधन की कल्पना भी नहीं कर सकता। कोई जुमलेबाजी नहीं, कोई चटखारा नहीं,उत्तेजना नहीं। महज संवाद.आम भारतीय चेहरा-पहनावा, मंझोली कद-काठी, दिखावे से दूर लेकिन बौद्धिकता से भरपूर। आज के फूहड़ संवादों को सुनकर आश्चर्य होता है कि कैसे अपने गंभीर संबोधनों से लोहिया जनता से अपना संवाद स्थापित कर लेते थे, जबकि उच्च तबके से नियंत्रित प्रेस का नजरिया उनके प्रति कम सकारात्मक रहता था। उस समापन सभा के बाद मधु लिमए उपचुनाव जीत गए और संसदीय कार्यवाहियों में जान डालते रहे। उस चुनाव अभियान में ही मैंने डॉ लोहिया को देखा-सुना था। आज से अठावन वर्ष पूर्व। उस समय मैं मुंगेर जिला स्कूल का छात्र था। उस उपचुनाव के परिणाम ने संकेत दे। दिया था कि आगे परिवर्तनकारी जनादेश आने वाला है और वह 1967 में फलीभूत हुआ।

(लेखक हिन्दी के महत्त्वपूर्ण विमर्शकार हैं। समाजवादी और साम्यवादी राजनीति में इनका गहरा दखल है।)

■

डॉ. राममनोहर लोहिया

नर-नारी समता

देश की सारी राजनीति में कांग्रेसी, कम्यूनिस्ट अथवा समाजवादी, चाहे जान-बूझ कर या परम्परा के द्वारा, राष्ट्रीय सहमति का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है और वह यह है कि शूद्र और औरत को, जो कि पूरी आबादी के तीन-चौथाई है, दबा कर और राजनीति से दूर रखो। पश्चिम एशिया में औरत एक सुन्दर खिलौना रही है। तफरीह के क्षणों में कदर और प्रेम, फिर अवस्तु। कई सौ या हजार बरस से हिंदू नर का दिमाग अपने हित को लेकर गैर-बराबरी के आधार पर बहुत ज्यादा गठित हो चुका है। उस दिमाग को ठोकर मार-मार करके बदलना है। नर-नारी के बीच में बराबरी कायम रखना है। नर-नारी की गैर-बराबरी शायद आधार है और सब गैर-बराबरी के लिए, या अगर आधार नहीं है तो जितने भी आधार हैं, बुनियाद की चट्टाने हैं, समाज में गैर बराबरी की और नाइन्साफी की, उनमें यह चट्टान शायद सबसे बड़ी चट्टान है। मर्द औरत के बीच की गैर-बराबरी, नर-नारी की गैर-बराबरी । समय आ गया है कि जवान औरतें और मर्द ऐसे बचकानेपन से विद्रोह करें। उन्हें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि यौन आचरण में केवल दो ही अक्षम्य अपराध हैं, बलात्कार और झूठ बोलना या वादों को तोड़ना, दूसरों को तकलीफ पहुंचाना या मारना। एक और तीसरा जुर्म है, जिससे जहां तक हो सके बचना चाहिये, जब जवान मर्द और औरतें अपनी ईमानदारी के लिये बदनामी झेलते हैं, तो उन्हें याद रखना चाहिए कि पानी फिर से निर्बन्ध बह सके, इसलिए कीचड़ साम करने की उन्हें यह कीमत चुकानी पड़ती है। हालांकि भारत में हमेशा औरतों के बारे में ऐसी संकुचित दृष्टि नहीं रही है। पूर्व इतिहास का एक सुन्दरतम सूत्र अब तक मिलता है। किसी एक ऋषि ने कहा है कि औरत हर महीने नयी हो जाती है, पवित्र बनती है, कितना सत्य है यह, इसमें कितनी उदारता और महानता है। इस संदर्भ में तीन हजार साल पूर्व की एक घटना भी उल्लेखनीय है। जाबाला को उसके लड़के ने पूछा, 'मेरा पिता कौन है?' उसरे जवाब दिया, 'मैं निश्चित नहीं कह सकती।' प्राचीन वाङ्मय की सत्यनिष्ठ ऐसी स्त्री जाबाला का ही उल्लेख करना पड़ेगा। इसका मतलब ऐसा नहीं है कि एक से अधिक प्रेमी स्त्री के होना चाहिये। मेरा कहना इतना ही है कि नर-नारी में समता-न्याय होना चाहिये। औरत बोझ न बने। हिंदुस्तान आज विकृत हो गया है। यौन पवित्रता की लम्बी-चौडी बातों के बावजूद आमतौर पर विवाह और यौन के संबंध में लोगों के विचार सड़े हुए हैं। सारे संसार में कभी न कभी मर्द व औरत के संबंध शुचिता, शुद्धता, पवित्रता के बड़े

लम्बे-चौड़े आदर्श बनाये गये हैं। घूम-फिर कर इन आदर्शों का संबंध शरीर तक सिमट जाता है और शरीर के भी छोटे से हिस्से पर। नारी का पर-पुरुष से स्पर्श न हो। शादी के पहले हरगिज न हो। बाद में अपने पति से हो। एक बार जो पति बने तो दूसरा किसी हालत में न बने। भले ही ऐसे विचार मर्द के लिए सारे संसार में कभी न कभी स्वाभाविक रहे हैं, किंतु भारत-भूमि पर इन विचारों की जड़ें और प्रस्फुटन मिले, अनिवर्चनीय है। 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' यह सूत्र किसी बड़े ऋषि ने चाहे न बनाया हो, लेकिन बड़ा प्रचलित है। आज तक उसे जकड़ कर रखो, मन से, धर्म से, सूत्र से, समाज संगठन से, और अन्ततोगत्वा शरीर की प्रणालियों से कि जल्दी-से-जल्दी लड़की का विवाह कर औरत को शुचिशुद्ध और पवित्र बना कर रखो। विवाह-धूम से कन्या पवित्र नहीं होती तब तक उसको असीम अकेलेपन में जिन्दगी काटनी पड़ती है। पुण्य क्या है और पाप क्या है, अब इस सवाल से बचा नहीं जा सकता। मैं मानता हूं कि आध्यात्मिकता निरपेक्ष है, किंतु नैतिकता सापेक्ष है, और हरेक युग और आदमी तक को अपनी-अपनी नैतिकता खोजनी चाहिये। एक औरत जिसने अपनी सारी जिन्दगी में सिर्फ एक ही बच्चे को जन्म दिया हो, चाहे वह अवैध ही क्यों न हो, और दूसरी ने आधे दर्जन या ज्यादा वैध बच्चे जने हों, तो इन दोनों में कौन ज्यादा शिष्ट और ज्यादा नैतिक है? एक औरत जिसने तीन बार तलाक दिया और चौथी बार वह फिर शादी करती है, और एक मर्द चौथी बार इसलिए शादी करता है कि एक के बाद एक उसकी पत्नियां मर गयी हैं, तो इन दोनों में से कौन ज्यादा शिष्ट और ज्यादा नैतिक है? तलाक और अवैध बच्चे इत्यादि एक मानी में असफलता है। किंतु पारस्परिक विश्वास शायद वह आदर्श है जो नर-नारी संबंधों में प्राप्त हो, किंतु जैसे कि अन्य मानवी-क्षेत्रों में इसमें भी प्रायः आदर्श में चूक जाते हैं, जब मर्द या औरत संपूर्णता का प्रयास करते हैं। तब? मेरे मन में कोई शक नहीं है कि सिर्फ एक अवैध बच्चा होना आधे दर्जन वैध बच्चे होने से कई गुना अच्छा है। उसी तरह उसमें कोई शक नहीं कि तीन पत्नियों में सभी की मृत्यु आकस्मिक नहीं हो सकती, उपेक्षा और गरीबी अवश्य ही रही होगी और इस तरह की उपेक्षा उन झगड़ों से कहीं ज्यादा बुरी है, जिनकी वजह से तीन बार या ज्यादा तलाक हुए हों।

इन निर्णयों का अब छिट-पुट महत्व नहीं है। इनका व्यापक प्रभाव हो गया है, क्योंकि आज विवाह और उसके बाद से संबंधित परिस्थितियां अगर किसी को पाप कहा जा सकता है तो वे पापपूर्ण हैं। हिंदुस्तान की प्रतीक नारी कौन, द्रौपदी या सावित्री? अगर दिमाग का पुनर्गठन करो तो सावित्री और द्रोपदी वाला किस्सा लेकर आप बहस छेड़ो। बहुत सम्भव है कि ये दोनों औरतें काल्पनिक हों। यह भी हो सकता है कि हुई हों। ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक रूप में हुई, लेकिन समय जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे किस्से उनके साथ जुड़ते गए। द्रौपदी महाभारत की सबसे बड़ी औरत है, इसमें कोई शक नहीं है। महाभारत के नायक का नाम कृष्ण है, उसी तरह से महाभारत की नायिका का नाम कृष्णा है- कृष्णा। आज के हिंदुस्तान में द्रौपदी की उसी विशिष्टता को मर्द और औरत याद रखे हुए हैं कि उसके पांच पति थे। द्रौपदी की जो खास बातें हैं उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। यह आज के सड़े-गले हिंदुस्तान के दिमाग की पहचान है कि इस तरह के सवाल पर दिमाग जल्दी बनता है कि किस औरत के कितने पति या कितने प्रेमी है, या इस अंग में वह किस तरह से चरित्रवादी रही है, और दूसरी बातों की तरफ ध्यान नहीं जाता। दरबार बैठा था। दरबार में उसने इसको साबित किया कि युधिष्ठिर को कोई हक नहीं था कि जो हारा हुआ है, उसे हक नहीं है किसी दूसरे को बाजी पर चढ़ा कर हरा देने का। जब मैं यह कहता हूं कि द्रौपदी हिंदुस्तान की सच्चे माने में प्रतीक है, सावित्री उसके जितनी नहीं, तब इसी अंग को देख कर कहता हूं कि वह ज्ञानी, समझदार, बहादुर, हिम्मतवाली, हाजिर जवाब थी। केवल एक पतिव्रत धर्म के कारण सावित्री को इतना सिर पर उठाना अनुचित बात है। यह दिखाता है कि हम लोगों का दिमाग कितना कूड़मगज हो गया है। मूढ़ हो गया है। मर्द के हितों की रक्षा करने वाला हो गया है। यह जरूरी नहीं कि किसी औरत के एक से ज्यादा पति या प्रेमी हों, जिस तरह से यह जरूरी नहीं कि एक मर्द की एक से ज्यादा कोई प्रेमिका या पत्नी हो। अगर एक-एक ही हो तो शायद वह दुनिया अच्छी होगी। मिथ्याभिमान और गलत प्रतीकों के कारण भारत का मन छिन्न-विच्छिन्न हुआ है। चित्तौड़ के पतन के बाद पद्मिनी ने अन्य औरतों के साथ जौहर किया। लेकिन पिछले महायुद्ध के समय रूसी जासूस नटाली ने युक्रेन में जरमन पलटन को धराशायी किया। जर्मन अफसर के घर रसोई बनाने की नौकरी करते-करते उसने वहां से जरमन पलटन की हलचलों की गुप्त खबरें बिना तार यंत्र के द्वारा अपनी मातृभूमि रूस में भेजी। उससे नटाली ने करीबन साठ-सत्तर हजार जरमन फौज की कतल करवाई। नटाली की हलचल जर्मनों के ध्यान में आते ही उन्होंने उसको फांसी दी। आज भारत को पद्मिनी नहीं नटाली चाहिए। भारतीय मर्द इतना पाजी है कि अपनी औरतों को वह पीटता है। सारी दुनिया में शायद औरतें पिटती हैं, लेकिन जितनी हिंदुस्तान में पिटती हैं इतनी और कहीं नहीं। हिंदुस्तान का मर्द इतना ज्यादा दिन भर सड़क पर, खेत पर दुकान पर, जिल्लत उठाता है और तू-तड़ाक सुनता है जिसकी सीमा नहीं। जिसका नतीजा होता है कि वह पलटा जवाब तो दे नहीं पाता, दिल में भरे रहता है और शाम को जब घर लौटता है तो घर की औरतों पर सारा गुस्सा उतारता है। फिर जब औरतों को गुस्सा चढ़ता है तो औरतें बच्चों पर उतारती हैं। और ऐसे ही देश पर चीन जैसा बलवान देश आक्रमण करता है। जुल्म का चक्र चलता है। इस चक्कर को तोड़ना है। झांसी की रानी के पुतले बने हैं। उन पर भी ध्यान देने से बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। झांसी के पुतले पर जो लेख है, वह तो और भी असभ्य है। लक्ष्मीबाई ने, ऐसा लिखा गया है, भारतीय नारी का गौरव बढ़ाया है। मैंने तो यही सीखा था कि लक्ष्मीबाई ने भारत का गौरव बढ़ाया है। भारत के सभी जन-जण का। इस तरह से तो शिवाजी और सुभाष बोस के पुतलों पर लिखा जाना चाहिये कि उन्होंने भारत के मर्द का गौरव बढ़ाया। लेकिन उन्होंने भारतीय नारी का भी गौरव बढ़ाया है और इस तरह लक्ष्मीबाई ने भी भारत के मर्द का भी गौरव बढ़ाया है। मेरी व्यक्तिगत राय है कि सभी औरतें खूबसूरत होती हैं। कुछ दूसरों से ज्यादा सुन्दर होती हैं, इतना ही। जब तक शूद्रों, हरिजनों और औरतों की सोई हुई आत्मा नहीं जगती और उसी तरह फूलने-फलने और बढ़ाने की कोशिश न होगी, तब तक हिंदुस्तान में कोई तरक्की, किसी तरह की नयी जान लायी न जा सकेगी। यदि गांधीजी आज जिन्दा होते तो मैं उनसे कहता कि आप रामराज्य की बात न कहें। यह अच्छा नहीं है। इसलिए मैं सीता-रामराज कायम करने की बात कहता हूं। घर की बात कहता हूँ, यदि सीता-रामराज घर-घर पहुंच जाये तो औरत-मर्द के आपसी झगड़े हमेशा के लिये खत्म हो जायेंगे और तब उनके आपसी रिश्ते भी अच्छे होंगे।

औरत मर्द सबके लिए 'श्री' रखना चाहिये। 'श्रीमती' कहना बन्द होना चाहिये। चाहे मर्द हो, चाहे औरत हो, चाहे लड़का हो, चाहे लड़की, सबके लिए 'श्री' होना चाहिये। दुनिया में मर्दों का राज्य रखने वाले ही

'श्रीमती' रखना चाहते हैं। दहेज की आग में भले ही अनेकों जल जायें, चौतरफा से प्रचलित मन्तव्यों को इतना मान कर चलना है, कि कभी मुश्किल से सुना जाता है कि किसी औरत ने समाज के वर्तमान संगठन को व्यापक रूप से तोड़ने का प्रयास किया है। अपने लिए भले ही तोड़ दें। छिप कर सैकड़ों तरह से तोड़ दें। लेकिन समाज का मौजूदा संगठन तोड़ने के लिये, उनकी तरफ से सामूहिक चोट मारने का प्रयास नहीं होता। गुजरात में दो-तीन औरतें रोज दाह करती हैं, वे समाज दाह क्यों नहीं करतीं, क्योंकि वे सर्वथा जकड़ दी गयी हैं। कहीं हमारी संस्कृति में कोई ऐसा बीज पड़ा है जो अपनी प्रकृति में ही दोफंटा है। अब समय आ गया है कि इस बीज के एक फांट को बिल्कुल खत्म किया जाये। कोई मोह अथवा संकोच करने से यह दोफंटा बीज हमेशा हमको निस्तेज बनाता रहेगा। ■

डॉ. राममनोहर लोहिया

हिंदू बनाम हिंदू

भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी लड़ाई, हिंदू धर्म में उदारवाद और कट्टरता की लड़ाई पिछले पांच हजार सालों से भी अधिक समय से चल रही है और उसका अंत अभी भी दिखाई नहीं पड़ता। इस बात की कोई कोशिश नहीं की गई, जो होनी चाहिए थी कि इस लड़ाई को नजर में रख कर हिंदुस्तान के इतिहास को देखा जाए। लेकिन देश में जो कुछ होता है, उसका बहुत बड़ा हिस्सा इसी के कारण होता है।

सभी धर्मों में किसी न किसी समय उदारवादियों और कट्टरपंथियों की लड़ाई हुई है। लेकिन हिंदू धर्म के अलावा वे बंट गए, अक्सर उनमें रक्तपात हुआ और थोड़े या बहुत दिनों की लड़ाई के बाद वे झगड़े पर काबू पाने में कामयाब हो गए। हिंदू धर्म में लगातार उदारवादियों और कट्टरपंथियों का झगड़ा चला आ रहा है जिसमें कभी एक की जीत होती है कभी दूसरे की और खुला रक्तपात तो कभी नहीं हुआ है, लेकिन झगड़ा आज तक हल नहीं हुआ और झगड़े के सवालों पर एक धुंध छा गया है।

ईसाई, इस्लाम और बौद्ध, सभी धर्मों में झगड़े हुए। कैथोलिक मत में एक समय इतने कट्टरपंथी तत्व इकट्ठा हो गए कि प्रोटेस्टेंट मत ने, जो उस समय उदारवादी था, उसे चुनौती दी। लेकिन सभी लोग जानते हैं कि सुधार आंदोलन के बाद प्रोटेस्टेंट मत में खुद भी कट्टरता आ गई। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट मतों के सिद्धांतों में अब भी बहुत फर्क है लेकिन एक को कट्टरपंथी और दूसरे को उदारवादी कहना मुश्किल है। ईसाई धर्म में सिद्धांत और संगठन का भेद है तो इस्लाम धर्म में शिया-सुन्नी का बंटवारा इतिहास के घटनाक्रम से संबंधित है। इसी तरह बौद्ध धर्म हीनयान और महायान के दो मतों में बंट गया और उनमें कभी रक्तपात तो नहीं हुआ, लेकिन उसका मतभेद सिद्धांत के बारे में है, समाज की व्यवस्था से उसका कोई संबंध नहीं।

हिंदू धर्म में ऐसा कोई बंटवारा नहीं हुआ। अलबत्ता वह बराबर छोटे-छोटे मतों में टूटता रहा है। नया मत उतनी ही बार उसके ही एक नए हिस्से के रूप में वापस आ गया। इसीलिए सिद्धांत के सवाल कभी साथ-साथ नहीं उठे और सामाजिक संघर्षों का हल नहीं हुआ। हिंदू धर्म नए मतों को जन्म देने में उतना ही तेज है जितना प्रोटेस्टेंट मत, लेकिन उन सभी के ऊपर वह एकता का अजीब आवरण डाल देता है जैसी एकता कैथोलिक संगठन ने अंदरूनी भेदों पर रोक लगा कर कायम की है। इस तरह हिंदू धर्म में जहां एक कट्टरता और अंधविश्वास का घर है, वहां वह नई-नई खोजों की व्यवस्था भी है।

हिंदू धर्म अब तक अपने अंदर उदारवाद और कट्टरता के झगड़े का हल क्यों नहीं कर सका, इसका पता लगाने की कोशिश करने के पहले, जो बुनियादी दृष्टि-भेद हमेशा रहा है, उस पर नजर डालना जरूरी है। चार बड़े और ठोस सवालों-वर्ण, स्त्री, संपत्ति और सहनशीलता-के बारे में हिंदू धर्म बराबर उदारवाद और कट्टरता का रुख बारी-बारी से लेता रहा है।

चार हजार साल या उससे भी अधिक समय पहले कुछ हिंदुओं के कान में दूसरे हिंदुओं के द्वारा सीसा गला कर डाल दिया जाता था और उनकी जबान खींच ली जाती थी क्योंकि वर्ण व्यवस्था का नियम था कि कोई शूद्र वेदों को पढ़े या सुने नहीं। तीन सौ साल पहले शिवाजी को यह मानना पड़ा था कि उनका वंश हमेशा ब्राह्मणों को ही मंत्री बनाएगा ताकि हिंदू रीतियों के अनुसार उनका राजतिलक हो सके। करीब दो सौ वर्ष पहले, पानीपत की आखिरी लड़ाई में, जिसके फलस्वरूप हिंदुस्तान पर अंग्रेजों का राज्य कायम हुआ, एक हिंदू सरदार दूसरे सरदार से इसलिए लड़ गया कि वह अपने वर्ण के अनुसार ऊंची जमीन पर तंबू लगाना चाहता था। करीब पंद्रह साल पहले एक हिंदू ने हिंदुत्व की रक्षा करने की इच्छा से महात्मा गांधी पर बम फेंका था, क्योंकि उस समय वे छुआछूत का नाश करने में लगे थे। कुछ दिनों पहले तक, और कुछ इलाकों में अब भी हिंदू नाई अछूत हिंदुओं की हजामत बनाने को तैयार नहीं होते, हालांकि गैर-हिंदुओं का काम करने में उन्हें कोई एतराज नहीं होता।

इसके साथ ही प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ दो बड़े विद्रोह हुए। एक, पूरे उपनिषद में वर्ण व्यवस्था को सभी रूपों में पूरी तरह खत्म करने की कोशिश की गई है। हिंदुस्तान के प्राचीन साहित्य में वर्ण व्यवस्था का जो विरोध मिलता है, उसके रूप, भाषा और विस्तार से पता चलता है कि ये विरोध दो अलग-अलग कालों में हुए-एक, आलोचना का काल और दूसरा, निंदा का। इस सवाल को भविष्य की खोजों के लिए छोड़ा जा सकता है, लेकिन इतना साफ है कि मौर्य और गुप्त वंशों के स्वर्ण-काल वर्ण व्यवस्था के एक व्यापक विरोध के बाद हुए। लेकिन वर्ण कभी पूरी तरह खत्म नहीं होते। कुछ कालों में बहुत सख्त होते हैं और कुछ अन्य कालों में उनका बंधन ढीला पड़ जाता है। कट्टरपंथी और उदारवादी वर्ण व्यवस्था के अंदर ही एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और हिंदू इतिहास के दो कालों में एक या दूसरी धारा के प्रभुत्व का ही अंतर होता है। इस समय उदारवादी का जोर है और कट्टरपंथियों में इतनी हिम्मत नहीं है कि वे गौर कर सकें। लेकिन कट्टरता उदारवादी विचारों में घुस कर अपने को बचाने की कोशिश कर रही है। अगर जन्मना वर्णों की बात करने का समय नहीं तो कर्मणा जातियों की बात की जाती है। अगर लोग वर्ण व्यवस्था का समर्थन नहीं करते

तो उसके खिलाफ काम भी शायद ही कभी करते हैं और एक वातावरण बन गया है जिसमें हिंदुओं की तर्कबुद्धि और उनकी दिमागी आदतों में टकराव है। व्यवस्था के रूप में वर्ण कहीं-कहीं ढीले हो गए हैं लेकिन दिमागी आदत के रूप में अभी भी मौजूद हैं। इस बात की आशंका है कि हिंदू धर्म में कट्टरता और उदारता का झगड़ा अभी भी हल न हो।

आधुनिक साहित्य ने हमें यह बताया है कि केवल स्त्री ही जानती है कि उसके बच्चे का पिता कौन है, लेकिन तीन हजार वर्ष या उसके भी पहले जबाल को स्वयं भी नहीं मालूम था कि उसके बच्चे का पिता कौन है और प्राचीन साहित्य में उसका नाम एक पवित्र स्त्री के रूप में आदर के साथ लिया गया है। हालांकि वर्ण व्यवस्था ने उसके बेटे को ब्राह्मण बना कर उसे भी हजम कर लिया। उदार काल का साहित्य हमें चेतावनी देता है कि परिवारों के स्रोत की खोज नहीं करनी चाहिए क्योंकि नदी के स्रोत की तरह वहां भी गंदगी होती है। अगर स्त्री बलात्कार का सफलतापूर्वक विरोध न कर सके तो उसे कोई दोष नहीं होता क्योंकि इस साहित्य के अनुसार स्त्री का शरीर हर महीने नया हो जाता है। स्त्री को भी तलाक और संपत्ति का अधिकार है। हिंदू धर्म के स्वर्ण युगों में स्त्री के प्रति यह उदार दृष्टिकोण मिलता है जबकि कट्टरता के युगों में उसे केवल एक प्रकार की संपत्ति माना गया है जो पिता, पति या पुत्र के अधिकार में रहती है।

इस समय हिंदू स्त्री एक अजीब स्थिति में है, जिसमें उदारता भी है और कट्टरता भी। दुनिया के और भी हिस्से हैं जहां स्त्री के लिए सम्मानपूर्ण पद पाना आसान है लेकिन संपत्ति और विवाह के संबंध में पुरुष के समान ही स्त्री के भी अधिकार हों, इसका विरोध अब भी होता है। मुझे ऐसे पर्चे पढ़ने को मिले जिनमें स्त्री को संपत्ति का अधिकार न देने की वकालत इस तर्क पर की गई थी कि वह दूसरे धर्म के व्यक्ति से प्रेम करने लग कर अपना धर्म न बदल दे, जैसे यह दलील पुरुषों के लिए कहीं ज्यादा सच न हो। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हों, यह अलग सवाल है, जो स्त्री व पुरुष दोनों वारिसों पर लागू होता है, और एक सीमा से छोटे टुकड़ों के और टुकड़े न होने पाएं, इसका कोई तरीका निकालना चाहिए। जब तक कानून या रीति-रिवाज या दिमागी आदतों में स्त्री और पुरुष के बीच विवाह और संपत्ति के बारे में फर्क रहेगा, तब तक कट्टरता पूरी तरह खत्म नहीं होगी। हिंदुओं के अंदर स्त्री को देवी के रूप में देखने की इच्छा, जो अपने उच्च स्थान से कभी न उतरे, उदार से उदार लोगों के दिमाग में भी बेमतलब के और संदेहास्पद खयाल पैदा कर देती है। उदारता और कट्टरता एक-दूसरे से जुड़ी रहेंगी जब तक हिंदू अपनी स्त्री को अपने समान ही इंसान नहीं मानने लगता।

हिंदू धर्म में संपत्ति की भावना संचय न करने और लगाव न रखने के सिद्धांत के कारण उदार है। लेकिन कट्टरपंथी हिंदू कर्म-सिद्धांत की इस प्रकार व्याख्या करता है कि धन और जन्म या शक्ति का स्थान ऊंचा है और जो कुछ है वही ठीक भी है। संपत्ति का मौजूदा सवाल कि मिल्कियत निजी हो या सामाजिक, हाल ही का है। लेकिन संपत्ति की स्वीकृत व्यवस्था या संपत्ति से कोई लगाव न रखने के रूप में यह सवाल हिंदू दिमाग में बराबर रहा है। अन्य सवालों की तरह संपत्ति और शक्ति के सवालों पर भी हिंदू दिमाग अपने विचारों को उनकी तार्किक परिणति तक भी नहीं ले जा पाया। समय और व्यक्ति के साथ हिंदू धर्म में इतना ही फर्क पड़ता है कि एक या दूसरे को प्राथमिकता मिलती है। आम तौर पर यह माना जाता है कि सहिष्णुता हिंदुओं का विशेष गुण है। यह गलत है, सिवाय इसके कि खुला रक्तपात अभी तक उसे पसंद नहीं रहा। हिंदू धर्म में कट्टरपंथी हमेशा प्रभुताशाली मत के अलावा अन्य मतों और विश्वासों का दमन कर के एकरूपता के द्वारा एकता कायम करने की कोशिश करते रहे हैं लेकिन उन्हें भी सफलता नहीं मिली। उन्हें अब तक आमतौर पर बचपना ही माना जाता था क्योंकि कुछ समय पहले तक विविधता में एकता का सिद्धांत हिंदू धर्म के अपने मतों पर ही लागू किया जाता था, इसलिए हिंदू धर्म में लगभग हमेशा ही सहिष्णुता का अंश बल प्रयोग से ज्यादा रहता था, लेकिन यूरोप की राष्ट्रीयता ने इससे मिलते-जुलते जिस सिद्धांत को जन्म दिया है, उससे इसका अर्थ समझ लेना चाहिए। वाल्टेयर जानता था कि उसका विरोधी गलती पर ही है, फिर भी वह सहिष्णुता के लिए, विरोधी के खुल कर बोलने के अधिकार के लिए लड़ने को तैयार था। इसके विपरीत हिंदू धर्म में सहिष्णुता की बुनियाद यह है कि अलग-अलग बातें अपनी जगह पर सही हो सकती हैं। वह मानता है कि अलग-अलग क्षेत्रों और वर्गों में अलग-अलग सिद्धांत और चलन हो सकते हैं, और उनके बीच वह कोई फैसला करने को तैयार नहीं। वह आदमी की जिंदगी में एकरूपता नहीं चाहता, स्वेच्छा से भी नहीं, और ऐसी विविधता में एकता चाहता है जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती, लेकिन जो अब तक उसके अलग-अलग मतों को एक लड़ी में पिरोती रही है। अतः उसमें सहिष्णुता का गुण इस विश्वास के कारण है कि किसी की जिंदगी में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, इस विश्वास के कारण कि अलग-अलग बातें गलत ही हों यह जरूरी नहीं है, बल्कि वे सच्चाई को अलग-अलग ढंग से व्यक्त कर सकती हैं।

कट्टरपंथियों ने अक्सर हिंदू धर्म में एकरूपता की एकता कायम करने की कोशिश की है। उनके उद्देश्य कभी बुरे नहीं रहे। उनकी कोशिशों के पीछे अक्सर शायद स्थायित्व और शक्ति की इच्छा थी, लेकिन उनके कामों के नतीजे हमेशा बहुत बुरे हुए। मैं भारतीय इतिहास का एक भी ऐसा काल नहीं जानता जिसमें कट्टरपंथी हिंदू धर्म भारत में एकता या खुशहाली ला सका हो जब भी भारत में एकता या खुशहाली आई, तो हमेशा वर्ण, स्त्री, संपत्ति, सहिष्णुता आदि के संबंध में हिंदू धर्म में उदारवादियों का प्रभाव अधिक था। हिंदू धर्म में कट्टरपंथी जोश बढ़ने पर हमेशा देश सामाजिक और राजनैतिक दृष्टियों से टूटा है और भारतीय राष्ट्र में, राज्य और समुदाय के रूप में बिखराव आया है। मैं नहीं कह सकता कि ऐसे सभी काल जिनमें देश टूट कर छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया, कट्टरपंथी प्रभुता के काल थे, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि देश में एकता तभी आई जब हिंदू दिमाग पर उदार विचारों का प्रभाव था। आधुनिक इतिहास में देश में एकता लाने की कई बड़ी कोशिशें असफल हुईं। ज्ञानेश्वर का उदार मत शिवाजी और बाजीराव के काल में अपनी चोटी पर पहुंचा, लेकिन सफल होने के पहले ही पेशवाओं की कट्टरता में गिर गया। फिर गुरु नानक के उदार मत से शुरू होनेवाला आंदोलन रणजीत सिंह के समय अपनी चोटी पर पहुंचा, लेकिन जल्दी ही सिक्ख सरदारों के कट्टरपंथी झगड़ों में पतित हो गया। ये कोशिशें, जो एक बार असफल हो गईं, आजकल फिर से उठने की बड़ी तेज कोशिशें करती हैं, क्योंकि इस समय महाराष्ट्र और पंजाब से कट्टरता की जो धारा उठ रही है, उसका इन कोशिशों से गहरा और पापपूर्ण आत्मिक संबंध है। इन सब में भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए पढ़ने और समझने की बड़ी सामग्री है जैसे धार्मिक संतों और देश में एकता लाने की राजनैतिक कोशिशों के बीच कैसा निकट संबंध है या कि पतन के बीज कहां हैं, बिल्कुल शुरू में या बाद की किसी गड़बड़ी में या कि इन समूहों द्वारा अपनी कट्टरपंथी असफलताओं को दुहराने की कोशिशों के पीछे क्या कारण है? इसी तरह विजयनगर की कोशिश और उसके पीछे प्रेरणा

निंबार्क की थी या शंकराचार्य की, और हम्पी की महानता के पीछे कौन-सा सड़ा हुआ बीज था, इन सब बातों की खोज से बड़ा लाभ हो सकता है। फिर, शेरशाह और अकबर की उदार कोशिशों के पीछे क्या था और औरंगजेब की कट्टरता के आगे उनकी हार क्यों हुई देश में एकता लाने की भारतीय लोगों और महात्मा गांधी की आखिरी कोशिश कामयाब हुई है, लेकिन आंशिक रूप में ही। इसमें कोई शक नहीं कि पांच हजार वर्षों से अधिक की उदारवादी धाराओं ने इस कोशिश को आगे बढ़ाया, लेकिन इसके तत्कालीन स्रोत में, यूरोप के उदारवादी प्रभावों के अलावा क्या था-तुलसी या कबीर और चैतन्य और संतों की महान परंपरा या अधिक हाल के धार्मिक-राजनैतिक नेता जैसे राममोहन राय और फैजाबाद के विद्रोही मौलवी फिर, पिछले पांच हजार सालों की कंट्टरपंथी धाराएं भी मिल कर इस कोशिश को असफल बनाने के लिए जोर लगा रही हैं और अगर इस बार कट्टरता की हार हुई, तो वह फिर नहीं उठेगी।

केवल उदारता ही देश में एकता ला सकती है। हिंदुस्तान बहुत बड़ा और पुराना देश है। मनुष्य की इच्छा के अलावा कोई शक्ति इसमें एकता नहीं ला सकती। कट्टरपंथी हिंदुत्व अपने स्वभाव के कारण ही ऐसी इच्छा नहीं पैदा कर सकता, लेकिन उदार हिंदुत्व कर सकता है, जैसा पहले कई बार कर चुका है। हिंदू धर्म, संकुचित दृष्टि से, राजनैतिक धर्म, सिद्धांतों और संगठन का धर्म नहीं है। लेकिन देश के राजनैतिक इतिहास में एकता लाने की बड़ी कोशिशों को इससे प्रेरणा मिली है और उनका यह प्रमुख माध्यम रहा है। हिंदू धर्म में उदारता और कट्टरता से महान युद्ध को देश की एकता और बिखराव की शक्तियों का संघर्ष भी कहा जा सकता है।

लेकिन उदार हिंदुत्व पूरी तरह समस्या का हल नहीं कर सका। विविधता में एकता के सिद्धांत के पीछे सड़न और बिखराव के बीज छिपे हैं। कट्टरपंथी तत्वों के अलावा, जो हमेशा ऊपर से उदार हिंदू विचारों में घुस आते हैं और हमेशा दिमागी सफाई हासिल करने में रुकावट डालते हैं, विविधता में एकता का सिद्धांत ऐसे दिमाग को जन्म देता है जो समृद्ध और निष्क्रिय दोनों ही है। हिंदू धर्म का बराबर छोटे-छोटे मतों में बंटते रहना बहुत बुरा है, जिनमें से हरेक अपना अलग शोर मचाए रखता है और उदार हिंदुत्व उनको एकता के आवरण में ढंकने की चाहे जितनी भी कोशिश करे, वे अनिवार्य ही राज्य के सामूहिक जीवन में कमजोरी पैदा करते हैं। एक आश्चर्यजनक उदासीनता फैल जाती है। कोई इन बराबर होनेवाले बंटवारों की चिंता नहीं करता जैसे सबको यकीन हो कि वे एक-दूसरे के ही अंग हैं। इसी से कट्टरपंथी हिंदुत्व को अवसर मिलता है और शक्ति की इच्छा के रूप में चालक शक्ति मिलती है, हालांकि उसकी कोशिशों के फलस्वरूप और भी ज्यादा कमजोरी पैदा होती है।

उदार और कट्टरपंथी हिंदुत्व के महायुद्ध का बाहरी रूप आजकल यह हो गया है कि मुसलमानों के प्रति क्या रुख हो। लेकिन हम एक क्षण के लिए भी यह न भूलें कि यह बाहरी रूप है और बुनियादी झगड़े जो अभी तक हल नहीं हुए, कहीं अधिक निर्णायक हैं। महात्मा गांधी की हत्या, हिंदू-मुस्लिम झगड़े की घटना उतनी नहीं थी जितनी हिंदू धर्म की उदार व कट्टरपंथी धाराओं के युद्ध की। इसके पहले कभी किसी हिंदू ने वर्ण, स्त्री, संपत्ति और सहिष्णुता के बारे में कट्टरता पर इतनी गहरी चोटें नहीं की थीं। इसके खिलाफ सारा जहर इकट्ठा हो रहा था। एक बार पहले भी गांधी जी की हत्या करने की कोशिश की गई थी। उस समय उसका खुला और साफ उद्देश्य यही था कि वर्ण व्यवस्था को बचा कर हिंदू धर्म की रक्षा की जाए। आखिरी और कामयाब कोशिश का उद्देश्य ऊपर से यह दिखाई पड़ता था कि इस्लाम के हमले से हिंदू धर्म को बचाया जाए, लेकिन इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को कोई संदेह नहीं होगा कि यह सब से बड़ा और सबसे जघन्य जुआ था, जो हारती हुई कट्टरता ने उदारता से अपने युद्ध में खेला। गांधी जी का हत्यारा वह कट्टरपंथी तत्व था जो हमेशा हिंदू दिमाग के अंदर बैठा रहता है, कभी दबा हुआ और कभी प्रकट, कुछ हिंदुओं में निष्क्रिय और कुछ में तेज। जब इतिहास के पन्ने गांधी जी की हत्या को कट्टरपंथी-उदार हिंदुत्व के युद्ध की एक घटना के रूप में रखेंगे और उन सभी पर अभियोग लगाएँगे जिन्हें वर्णों के खिलाफ और स्त्रियों के हक में, संपत्ति के खिलाफ और सहिष्णुता के हक में, गांधी जी के कामों से गुस्सा आया था, तब शायद हिंदू धर्म की निष्क्रिता और उदासीनता नष्ट हो जाए। अब तक हिंदू धर्म के अंदर कट्टर और उदार एक-दूसरे से जुड़े क्यों रहे और अभी तक उनके बीच कोई साफ और निर्णायक लड़ाई क्यों नहीं हुई, यह एक ऐसा विषय है जिस पर भारतीय इतिहास के विद्यार्थी खोज करें तो बड़ा लाभ हो सकता है। अब तक हिंदू दिमाग से कट्टरता कभी पूरी तरह दूर नहीं हुई, इसमें कोई शक नहीं। इस झगड़े का कोई हल न होने के विनाशपूर्ण नतीजे निकले, इसमें भी कोई शक नहीं। जब तक हिंदुओं के दिमाग से वर्ण-भेद बिल्कुल ही खत्म नहीं होते, या स्त्री को बिल्कुल पुरुष के बराबर ही नहीं माना जाता, या संपत्ति और व्यवस्था के संबंध से पूरी तरह तोड़ा नहीं जाता तब तक कट्टरता भारतीय इतिहास में अपना विनाशकारी काम करती रहेगी और उसकी निष्क्रियता को कायम रखेगी। अन्य धर्मों की तरह हिंदू धर्म सिद्धांतों और बंधे हुए नियमों का धर्म नहीं है बल्कि सामाजिक संगठन का एक ढंग है और यही कारण है कि उदारता और कट्टरता का युद्ध अभी समाप्ति तक नहीं लड़ा गया और ब्राह्मण-बनिया मिल कर सदियों से देश पर अच्छा या बुरा शासन करते आए हैं जिसमें कभी उदारवादी ऊपर रहते हैं कभी कट्टरपंथी।

उन चार सवालों पर केवल उदारता से काम न चलेगा। अंतिम रूप से उनका हल करने के लिए हिंदू दिमाग से इस झगड़े को पूरी तरह खत्म करना होगा।

इन सभी हल न होनेवाले झगड़ों के पीछे निर्गुण और सगुण सत्य के संबंध का दार्शनिक सवाल है। इस सवाल पर उदार और कट्टर हिंदुओं के रुख में बहुत कम अंतर है। मोटे तौर पर, हिंदू धर्म सगुण सत्य के आगे निर्गुण सत्य की खोज में जाना चाहता है, वह सृष्टि को झूठा तो नहीं मानता लेकिन घटिया किस्म का सत्य मानता है। दिमाग से उठ कर परम सत्य तक पहुंचने के लिए वह इस घटिया सत्य को छोड़ देता है। वस्तुतः सभी देशों का दर्शन इसी सवाल को उठाता है। अन्य धर्मों और दर्शनों से हिंदू धर्म का फर्क यही है कि दूसरे देशों में यह सवाल अधिकतर दर्शन में ही सीमित रहा है, जबकि हिंदुस्तान में यह जनसाधारण के विश्वास का एक अंग बन गया है। दर्शन को संगीत की धुनें देकर विश्वास में बदल दिया गया है। लेकिन दूसरे देशों में दार्शनिकों ने परम सत्य की खोज में आम तौर पर सांसारिक सत्य से बिल्कुल ही इनकार किया है। इस कारण आधुनिक विश्व पर उसका प्रभाव बहुत कम पड़ा है। वैज्ञानिक और सांसारिक भावना ने बड़ी उत्सुकता से प्रकृति की सारी जानकारी को इकट्ठा किया, अलग-अलग कर के क्रमबद्ध किया और उन्हें एक में बांधनेवाले नियम खोज निकाले। इससे आधुनिक मनुष्य को, जो मुख्यतः यूरोपीय है, जीवन पर विचार करने का एक खास दृष्टिकोण मिला है। वह सगुण सत्य को, जैसा है वैसा ही बड़ी खुशी से स्वीकार कर लेता है। इसके अलावा

ईसाई मत की नैतिकता ने मनुष्य के अच्छे कामों को ईश्वरीय काम का पद प्रदान किया है। इन सब के फलस्वरूप जीवन की असलियतों का वैज्ञानिक और नैतिक उपयोग होता है। लेकिन हिंदू धर्म कभी अपने दार्शनिक आधार से छुटकारा नहीं पा सका। लोगों का साधारण विश्वास भी व्यक्त और प्रकट सगुण सत्य से आगे जाकर अव्यक्त और अप्रकट निर्गुण सत्य को देखना चाहता है। यूरोप में भी मध्ययुग में ऐसा ही दृष्टिकोण था लेकिन मैं फिर कह दूं कि यह दार्शनिकों तक ही सीमित था और सगुण सत्य से इनकार कर के उसे नकली मानता था जबकि आम लोग ईसाई मत को नैतिक विश्वास के रूप में मानते थे और उस हद तक सगुण सत्य को स्वीकार करते थे। हिंदू धर्म ने कभी जीवन की असलियतों से बिल्कुल इनकार नहीं किया बल्कि वह उन्हें एक घटिया किस्म का सत्य मानता है और आज तक हमेशा ऊंचे प्रकार के सत्य की खोज करने की कोशिश करता रहा है। यह लोगों के साधारण विश्वास का अंग है।

एक बड़ा अच्छा उदाहरण मुझे याद आता है। कोणार्क के विशाल लेकिन आधे नष्ट मंदिर में पत्थरों पर हजारों मूर्तियां खुदी हुई मिलती हैं। जिंदगी की असलियतों की तस्वीरें देने में कलाकार ने किसी तरह की कंजूसी या संकोच नहीं दिखाया है। जिंदगी की सारी विभिन्नताओं को उसने स्वीकार किया है। उसमें भी एक क्रमबद्ध व्यवस्था मालूम पड़ती है। सब से नीचे की मूर्तियों में शिकार, उसके ऊपर प्रेम, फिर संगीत और फिर शक्ति का चित्रण है। हर चीज में बड़ी शक्ति और क्रियाशीलता है। लेकिन मंदिर के अंदर कुछ नहीं है, और क्रियाशीलता से अंदर की खामोशी और स्थिरता, मंदिर में बुनियादी तौर पर यही अंकित है। परम सत्य की खोज कभी बंद नहीं हुई।

चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला और मूर्तिकला के अधिक विकास की भी अपनी अलग कहानी है। वस्तुतः जो प्राचीन चित्र अब भी मिलते हैं, वास्तुकला पर ही आधारित हैं। संभवतः परम सत्य के बारे में अपने विचारों को व्यक्त करना चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला और मूर्तिकला में ज्यादा सरल है ।

अतः हिंदू व्यक्तित्व दो हिस्सों में बंट गया है। अच्छी हालत में हिंदू सगुण सत्य को स्वीकार कर के भी निर्गुण परम सत्य को नहीं भूलता और बराबर अपनी अंतदृष्टि को विकसित करने की कोशिश करता रहता है, और बुरी हालत में उसका पाखंड असीमित होता है। हिंदू शायद दुनिया का सबसे बड़ा पाखंडी होता है, क्योंकि वह न सिर्फ दुनिया के सभी पाखंडियों की तरह दूसरों को धोखा देता है बल्कि अपने को धोखा दे कर खुद अपना नुकसान भी करता है। सगुण और निर्गुण सत्य के बीच बंटा हुआ उसका दिमाग अक्सर इसमें उसे प्रोत्साहन देता है। पहले, और आज भी, हिंदू धर्म एक आश्चर्यजनक दृश्य प्रस्तुत करता है। हिंदू धर्म अपने माननेवालों को, छोटे-से-छोटे को भी, ऐसी दार्शनिक समानता, मनुष्य और मनुष्य और अन्य वस्तुओं की एकता प्रदान करता है जिसकी मिसाल कहीं और नहीं मिलती। दार्शनिक समानता के इस विश्वास के साथ ही गंदी से गंदी सामाजिक विषमता का व्यवहार चलता है। मुझे अक्सर लगता है कि दार्शनिक हिंदू खुशहाल होने पर गरीबों और शूद्रों से पशुओं जैसा, पशुओं से पत्थरों जैसा और अन्य वस्तुओं से दूसरी वस्तुओं की तरह व्यवहार करता है। शाकाहार और अहिंसा गिर कर छिपी हुई क्रूरता बन जाते हैं। अब तक की सभी मानवीय चेष्टाओं के बारे में यह कहा जा सकता है कि एक न एक स्थिति में हर जगह सत्य क्रूरता में बदल जाता है और सुंदरता अनैतिकता में, लेकिन हिंदू धर्म के बारे में यह औरों की अपेक्षा ज्यादा सच है। हिंदू

धर्म ने सचाई और सुंदरता की ऐसी चोटियां हासिल कीं जो किसी और देश में नहीं मिलतीं, लेकिन वह ऐसे अंधेरे गढ़ों में भी गिरा है जहां तक किसी और देश का मनुष्य नहीं गिरा। जब तक हिंदू जीवन की असलियतों को, काम और मशीन, जीवन और पैदावार, परिवार और जनसंख्या वृद्धि, गरीबी और अत्याचार और ऐसी अन्य असलियतों को वैज्ञानिक और लौकिक दृष्टि से स्वीकार करना नहीं सीखता, तब तक वह अपने बंटे हुए दिमाग पर काबू नहीं पा सकता और न कट्टरता को ही खत्म कर सकता है, जिसने अक्सर उसका सत्यानाश किया है।

इसका यह अर्थ नहीं कि हिंदू धर्म अपनी भावधारा ही छोड़ दे और जीवन और सभी चीजों की एकता की कोशिश न करे। यह शायद उसका सबसे बड़ा गुण है। अचानक मन में भर जानेवाली ममता, भावना की चेतना और प्रसार, जिसमें गांव का लड़का मोटर निकलने पर बकरी के बच्चे को इस तरह चिपटा लेता है जैसे उसी में उसकी जिंदगी हो, या कोई सूखी जड़ों और हरी शाखों के पेड़ को ऐसे देखता है जैसे वह उसी का एक अंश हो, एक ऐसा गुण है जो शायद सभी धर्मों में मिलता है लेकिन कहीं उसने ऐसी गहरी और स्थायी भावना का रूप नहीं लिया जैसा हिंदू धर्म में। बुद्धि का देवता, दया के देवता से बिल्कुल अलग है। मैं नहीं जानता कि ईश्वर है या नहीं है, लेकिन मैं इतना जानता हूं कि सारे जीवन और सृष्टि को एक में बाँधनेवाली ममता की भावना है, हालांकि अभी वह एक दुर्लभ भावना है। इस भावना को सारे कामों, यहां तक कि झगड़ों की भी पृष्ठभूमि बनाना शायद व्यवहार में मुमकिन न हो। लेकिन यूरोप केवल सगुण, लौकिक सत्य को स्वीकार करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुए झगड़ों से मर रहा है, हिंदुस्तान केवल निर्गुण, परम सत्य को ही स्वीकार करने के फलस्वरूप निष्क्रियता से मर रहा है। मैं बेहिचक कह सकता हूं कि मुझे सड़ने की अपेक्षा झगड़े से मरना ज्यादा पसंद है। लेकिन विचार और व्यवहार के क्या यही दो रास्ते मनुष्य के सामने हैं? क्या खोज की वैज्ञानिक भावना का एकता की रागात्मक भावना से मेल बैठाना मुमकिन नहीं है, जिसमें एक-दूसरे के अधीन न हो और समान गुणोंवाले दो कर्मों के रूप में दोनों बराबरी की जगह पर हों। वैज्ञानिक भावना वर्ण के खिलाफ और स्त्रियों के हक में, संपत्ति के खिलाफ और सहिष्णुता के हक में काम करेगी और धन पैदा करने के ऐसे तरीके निकालेगी जिससे भूख और गरीबी दूर होगी। एकता की सृजनात्मक भावना वह रागात्मक शक्ति पैदा करेगी जिसके बिना मनुष्य की बड़ी-से-बड़ी कोशिशें लोभ, ईष्या, शक्ति और घृणा में बदल जाती हैं।

यह कहना मुश्किल है कि हिंदू धर्म यह नया दिमाग पा सकता है और वैज्ञानिक और रागात्मक भावनाओं में मेल बैठ सकता है या नहीं। लेकिन हिंदू धर्म दरअसल है क्या? इसका कोई एक उत्तर नहीं, बल्कि

कई उत्तर हैं। इतना निश्चित है कि हिंदू धर्म कोई खास सिद्धांत या संगठन नहीं है न विश्वास और व्यवहार का कोई नियम उसके लिए अनिवार्य ही है। स्मृतियों और कथाओं, दर्शन और रीतियों की एक पूरी दुनिया है जिसका कुछ हिस्सा बहुत ही बुरा है और कुछ ऐसा है जो मनुष्य के काम आ सकता है। इन सबसे मिल कर हिंदू दिमाग बनता है जिसकी विशेषता कुछ विद्वानों ने सहिष्णुता और विविधता में एकता बताई है। हमने इस सिद्धांत की कमियां देखीं और यह देखा कि दिमागी निष्क्रियता दूर करने के लिए कहां उसमें सुधार करने की जरूरत है। इस सिद्धांत को समझने में आमतौर पर यह गलती की जाती है कि उदार हिंदू धर्म हमेशा अच्छे विचारों और प्रभावों को अपना लेता है चाहे वे जहां से भी आए हों, जबकि कट्टरता ऐसा नहीं करती। मेरे खयाल में यह विचार अज्ञानपूर्ण है। भारतीय इतिहास के पन्नों में मुझे ऐसा कोई काल नहीं मिला जिसमें आजाद हिंदू ने विदेशों में विचारों या वस्तुओं की खोज की हो। हिंदुस्तान और चीन के हजारों साल के संबंध में मैं सिर्फ पांच वस्तुओं के नाम जान पाया हूं जिनमें सिंदूर भी है, जो चीन से भारत लाई गई। विचारों के क्षेत्र में कुछ भी नहीं आया।

आजाद हिंदुस्तान का आमतौर पर बाहरी दुनिया से एकतरफा रिश्ता होता था जिसमें कोई विचार बाहर से नहीं आते थे और वस्तुएं भी कम ही आती थीं, सिवाय चांदी आदि के। जब कोई विदेशी समुदाय आकर यहां बस जाता और समय बीतने पर हिंदू धर्म का ही एक अंग या वर्ण बनने की कोशिश करता तब जरूर कुछ विचार और कुछ चीजें अंदर आतीं। इसके विपरीत गुलाम हिंदुस्तान और उस समय का हिंदू धर्म विजेता की भाषा, उसकी आदतों और उसके रहन-सहन की बड़ी तेजी से नकल करता है। आजादी में दिमाग की आत्मनिर्भरता के साथ गुलामी में पूरा दिमागी दीवालियापन मिलता है। हिंदू धर्म की इस कमजोरी को कभी नहीं समझा गया और यह खेद की बात है कि उदारवादी हिंदू अज्ञानवश, प्रचार के लिए इसके विपरीत बातें फैला रहे हैं। आजादी की हालत में हिंदू दिमाग खुला जरूर रहता है, लेकिन केवल देश के अंदर होनेवाली घटनाओं के प्रति। बाहरी विचारों और प्रभावों के प्रति तब भी बंद रहता है। यह उसकी एक बड़ी कमजोरी है और भारत के विदेशी शासन का शिकार होने का एक कारण है। हिंदू दिमाग को अब न सिर्फ अपने देश के अंदर की बातों बल्कि बाहर की बातों के प्रति भी अपना दिमाग खुला रखना होगा और विविधता में एकता के अपने सिद्धांत को सारी दुनिया के विचार और व्यवहार पर लागू करना होगा। आज हिंदू धर्म में उदारता और कट्टरता की लड़ाई ने हिंदू-मुस्लिम झगड़े का ऊपरी रूप ले लिया है लेकिन हर ऐसा हिंदू जो अपने धर्म और देश के इतिहास से परिचित है, उन झगड़ों की ओर भी उतना ही ध्यान देगा जो पांच हजार साल से भी अधिक समय से चल रहे हैं और अभी तक हल नहीं हुए। कोई हिंदू मुसलमानों के प्रति सहिष्णु नहीं हो सकता जब तक कि वह उसके साथ ही वर्ण और संपत्ति के विरुद्ध और स्त्रियों के हक में काम न करे। उदार और कट्टर हिंदू धर्म की लड़ाई अपनी सबसे उलझी हुई स्थिति में पहुंच गई है और संभव है कि उसका अंत भी नजदीक ही हो। कट्टरपंथी हिंदू अगर सफल हुए तो चाहे उनका उद्देश्य कुछ भी हो, भारतीय राज्य के टुकड़े कर देंगे न सिर्फ हिंदू-मुस्लिम दृष्टि से बल्कि वर्णों और प्रांतों की दृष्टि से भी। केवल उदार हिंदू ही राज्य को कायम कर सकते हैं। अतः पांच हजार वर्षों से अधिक की लड़ाई अब इस स्थिति में आ गई है कि एक राजनैतिक समुदाय और राज्य के रूप में हिंदुस्तान के लोगों की हस्ती ही इस बात पर निर्भर है कि हिंदू धर्म में उदारता की कट्टरता पर जीत हो।

धार्मिक और मानवीय सवाल आज मुख्यतः एक राजनैतिक सवाल है। हिंदू के सामने आज यही एक रास्ता है कि अपने दिमाग में क्रांति लाए या फिर गिर कर दब जाए। उसे मुसलमान और ईसाई बनना होगा और उन्हीं की तरह महसूस करना होगा। मैं हिंदू-मुस्लिम एकता की बात नहीं कर रहा क्योंकि वह एक राजनैतिक, संगठनात्मक या अधिक से अधिक सांस्कृतिक सवाल है। मैं मुसलमान और ईसाई के साथ हिंदू की रागात्मक एकता की बात कर रहा हूं, धार्मिक विश्वास और व्यवहार में नहीं, बल्कि इस भावना में कि "मैं वह हूं"। ऐसी रागात्मक एकता हासिल करना कठिन मालूम पड़ सकता है, या अक्सर एक तरफ हो सकता है और उसे हत्या और रक्तपात की पीड़ा सहनी पड़ सकती है। मैं यहां अमरीकी गृह-युद्ध की याद दिलाना चाहूंगा जिसमें चार लाख भाइयों ने भाइयों को मारा और छह लाख व्यक्ति मरे लेकिन जीत की घड़ी में अब्राहम लिंकन और अमरीका के लोगों ने उत्तरी और दक्षिणी भाइयों के बीच ऐसी ही रागात्मक एकता दिखाई। हिंदुस्तान का भविष्य चाहे जैसा भी हो, हिंदू को अपने आप को पूरी तरह बदल कर मुसलमान के साथ ऐसी रागात्मक एकता हासिल करनी होगी। सारे जीवों और वस्तुओं की रागात्मक एकता में हिंदू का विश्वास भारतीय राज्य की राजनैतिक जरूरत भी है कि हिंदू मुलसमान के साथ एकता महसूस करे। इस रास्ते पर बड़ी रुकावटें और हारें हो सकती हैं, लेकिन हिंदू दिमाग को किस रास्ते पर चलना चाहिए, यह साफ है।

कहा जा सकता है कि हिंदू धर्म में उदारता और कट्टरता की इस लड़ाई को खत्म करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि धर्म से ही लड़ा जाए। यह हो सकता है लेकिन रास्ता टेढ़ा है और कौन जाने कि चालाक हिंदू धर्म, विरोधियों को भी अपना एक अंग बना कर निगल न जाए। इसके अलावा कट्टरपंथियों को जो भी अच्छे समर्थक मिलते हैं, वह कम पढ़े-लिखे लोगों में और शहर में रहनेवालों में। गांव के अनपढ़ लोगों में तत्काल चाहे जितना भी जोश आ जाए वे उसका स्थायी आधार नहीं बन सकते। सदियों की बुद्धि के कारण पढ़े-लिखे लोगों की तरह गांव वाले भी सहिष्णु होते हैं। कम्युनिज्म या फासिज्म जैसे लोकतंत्र विरोधी सिद्धांतों से ताकत पाने की खोज में, जो वर्ण और नेतृत्व के मिलते-जुलते विचारों पर आधारित हैं, हिंदू धर्म का कट्टरपंथी अंश भी धर्म-विरोधी का बाना पहन सकता है। अब समय है कि हिंदू सदियों से इकट्ठा हो रही गंदगी को अपने दिमाग से निकाल कर उसे साफ करें। जिंदगी की असलियतों और अपनी परम सत्य की चेतना, सगुण सत्य और निर्गुण सत्य के बीच उसे एक सच्चा और फलदायक रिश्ता कायम करना होगा। केवल इसी आधार पर वह वर्ण, स्त्री, संपत्ति और सहिष्णुता के सवालों पर हिंदू धर्म के कट्टरपंथी तत्वों को हमेशा के लिए जीत सकेगा जो इतने दिनों तक उसके विश्वासों को गंदा करते रहे हैं और उसके देश के इतिहास में बिखराव लाते रहे हैं। पीछे हटते समय हिंदू धर्म में कट्टरता अक्सर उदारता के अंदर छिप कर बैठ जाती है। ऐसा फिर न होने पाए। सवाल साफ हैं। समझौते से पुरानी गलतिया फिर दुहराई जाएंगी। इस भयानक युद्ध को अब खत्म करना ही होगा। भारत के दिमाग की एक नई कोशिश तब शुरू होगी जिसमें बौद्धिक का रागात्मक से मेल होगा, जो विविधता में एकता को निष्क्रिय नहीं बल्कि, सशक्त सिद्धांत बनाएगी और जो स्वच्छ लौकिक खुशियों को स्वीकार कर के भी सभी जीवों और वस्तुओं की एकता को नजर से ओझल न होने देगी।

(जुलाई, 1950)

■

डॉ. दिनेश पाल

कांशीराम : बहुजन समाज के प्रतिबद्ध शिल्पकार

आज देश में दो व्यक्ति पदयात्रा पर निकले हैं। दोनों आर्थिक रूप से संपन्न हैं। यात्रा में उनके खाने-पीने और ठहरने की उत्तम व्यवस्था है। उनके पास संसाधनों से सजी एक प्रचार-प्रसार टीम भी है, जिसके द्वारा हर पल की घटना व तस्वीरें सोशल मीडिया पर देखने को मिल रही हैं। एक कन्याकुमारी से कश्मीर तक की पदयात्रा कर रहा है, तो दूसरा बिहार में पदयात्रा पर निकला है। आज से लगभग चालीस साल पहले 1983 में भी एक व्यक्ति साइकिल से देश की यात्रा करने निकला था, लेकिन उसके पास न इतने संसाधन थे और ना ही सूचना देने के लिए कोई मीडिया तंत्र। सुबह जब साइकिल निकलती थी तो यह पता नहीं होता था कि शाम को ठहरना कहां है और खाने में क्या मिलेगा? मिलेगा या नहीं, यह भी तय नहीं होता था। तय था तो बस इतना की अपनी सोती कौम को जगा देना है। यह सपना सच हुआ और आज लोग गर्व से कहते हैं कि ''कांशीराम की नेक कमाई, जिसने सोती कौम जगाई।'' जी हां, मैं उस नारा-नर की बात कर रहा हूं, जिसने अपने जनग्राह्य नारों से बहुजन समाज को झकझोर कर रख दिया। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जाने के बाद दलितों के सामने घना अँधेरा छाने लगा था। आजाद भारत में भी उनका सुनने वाला कोई नहीं था। इसी बीच अम्बेडकर जयन्ती तथा बुद्ध जयन्ती के अवकाश को लेकर एक विवाद हुआ और मान्यवर कांशीराम 1971 में नौकरी छोड़ बहुजनों को जगाने निकल पड़े। विदित हो कि विज्ञान विषय में स्नातक कर पुणे के डिफेंस रिसर्च ऐण्ड डेवलपमेंट आगेर्नाइजेशन (डीआरडीओ) की प्रयोगशाला में सहायक के पद पर कार्यरत थे।

पंजाब के रोपड़ जिला में खवासपुर गांव के हरि सिंह तथा बिशन कौर के घर में 15 मार्च, 1934 को पुत्ररत्न के रूप में कांशीराम का जन्म हुआ, जो कि पूरे बहुजन समाज के लिए अनमोल रत्न साबित हुए। कांशीराम बाबा साहेब से बहुत प्रभावित थे। बाबा साहेब के सिद्धान्तों व विचारों को मूर्त रूप देने अर्थात उसे जमीन पर उतारने का बीड़ा मान्यवर साहब ने उठा लिया और उसे ऐसे मुकाम पर पहुंचाया कि आज इक्कसवीं सदी में हर कोई बाबासाहेब को अपनाने को आतुर है। 2015 में हिन्दी के प्रख्यात आलोचक प्रो. चैथीराम यादव ने 'अपनी माटी' पत्रिका के एक साक्षात्कार में कहा था कि, 'बीसवीं सदी भले ही गाँधी-नेहरू का रहा हो, लेकिन इक्कीसवीं सदी पूरा का पूरा अम्बेडकर के नाम रहेगा। बेशक आज का दौर आम्बेडकरवादी आन्दोलन का दौर है और इसे मान्यवर कांशीराम साहब ने अपने खून-पसीना से सींचकर तैयार किया है।

मान्यवर साहब ने नौकरी छोड़ने के बाद चैबीस पन्नों का एक पत्र अपने परिवार को लिखकर स्पष्ट कर दिया कि अब परिवार से मेरा कोई नाता-रिश्ता नहीं रहेगा, मैं अब कभी भी घर नहीं आऊंगा। ऐसा ही पत्र 1923 में सोलह वर्ष की उम्र में क्रान्तिकारी भगत सिंह ने भी अपने परिवार को लिखकर देश के लिए गृहत्याग किया था। खैर, कांशीराम ने नौकरी त्यागने के बाद 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' से जुड़ा, क्योंकि उस समय दलितों की सबसे बड़ी पार्टी यही थी। मालूम हो कि इस पार्टी की घोषणा 30 सितंबर, 1956 को बाबा साहेब ने ही की थी, लेकिन पार्टी के गठन से पहले ही 06 दिसम्बर, 1956 को

कांशीराम (15-03-1934- 09-10-2006)

उनका महापरिनिर्वाण हो गया। तत्पश्चात 01 अक्टूबर, 1957 को नागपुर में पार्टी का विधिवत गठन हुआ। बहुत जल्द ही इस पार्टी से मान्यवर साहब का मोहभंग हो गया। उन्होंने 14 अक्टूबर, 1971 को अपने पहले संगठन एससी, एसटी, ओबीसी एवं अल्पसंख्यक कर्मचारी संघ की स्थापना की। इस संगठन में तेजी से लोग जुड़ने लगे और जल्द ही इसका विस्तार महाराष्ट्र से बाहर भी होने लगा। 1978 में यह ऑल इंडिया बैकवर्ड ऐण्ड माइनारिटी कम्युनिटीज एंप्लॉइज फेडरेशन (बामसेफ) के नाम से मशहूर हुआ। सन 1981 में दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (डी एस-4) का गठन किया और नारा दिया कि, 'बनिया-बाभन ठाकुर छोड़। बाकी सब हैं डी एस-4।'1982 में उन्होंने 'द चमचा एज' लिखा, जिसे हिन्दी में चमचा युग कहा जाता है। यह किताब चार भागों में विभाजित है। भाग तीन में चमचा युग को स्पष्ट करते हुए मान्यवर साहब लिखते हैं कि, '24 सितम्बर, 1932 को पूना समझौता दलित वर्गों पर थोप दिया गया। इसके साथ ही चमचा युग शुरू हो गया।' चमचा को गुलाम बताते हुए उन्होंने चमचों की कई किस्मों को रेखांकित किया है। साल 1983 में डीएस-4 के तहत कांशीराम ने सघन जनसंपर्क अभियान के तहत साइकिल मार्च निकाला। सात राज्यों में तकरीबन 3000 किलोमीटर की यात्रा की। इन संगठनों के माध्यम से दलित, पिछड़े एवं अल्पसंख्यक समाज में चेतना ज्योति जगाकर 14 अप्रैल, 1984 को 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन करते हुए इन समाजियों को बहुजन समाज नाम दिया। बहुजन समाज को सामाजिक अस्त्र-शस्त्र प्रदान करने के लिए उन्होंने दलित एवं पिछड़े समाज में जन्में महापुरुषों के विचारों एवं उनके संघर्षो को आधार बनाया। वे अपनी सभाओं में ललकारते हुए कहते थे कि, 'हे बहुजन वीरों! उठो! अब मत सोओ, सोने व रोने का समय समाप्त हो गया। नई उमंगों, नई

तरंगों से उठो! माहात्मा ज्योतिराव फुले, विदुषी माता सावित्रीबाई फुले, नारायण गुरु, छत्रपति शाहू जी महाराज, संत गाडके जी महाराज, पेरियार रामासामी नायकर एवं बाबासाहेब आंबेडकर के लहू का लेस मात्र भी रक्त प्रवाह है तो पुनः उठो! महाप्रलयकारी ज्वाला की तरह भभको। मैं बहुजनों को इस देश का हुक्मरान देखना चाहता हूँ।' उन्होंने दलितों, पिछड़ों एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों के बल पर 85 प्रतिशत बहुजन समाज के सूत्र का सूत्रपात किया और नारा दिया कि,'जिसकी जितनी संख्या भारी। उसकी उतनी भागेदारी। मान्यवर साहब ने आम्बेडकरवाद के पौधे को भारत के कोने-कोने में लेकर घूमा लेकिन उन्हें सबसे ऊर्वर भूमि उत्तर प्रदेश की लगी, जहां उन्होंने रोप दिया। उनका मानना था कि, 'अगर भारत को शरीर मान लिया जाए तो उत्तर प्रदेश उसकी गर्दन है, अर्थात सभी राज्यों से ज्यादा एम. पी. की सीटें इसी राज्य में हैं। अगर गर्दन को काबू कर लिया जाए तो सारा शरीर काबू में आ जाएगा। साहब बिल्कुल सही साबित हुए। 03 जून, 1995 को भारत के सर्वाधिक विधानसभा सदस्यों वाला राज्य उत्तर प्रदेश में पहली दलित महिला के रूप में बसपा नेत्री मायावती को मुख्यमंत्री बनने का संयोग बना।

सन1984 में बसपा के गठन के बाद उन्होंने अपना पहला चुनाव 1984 में ही छत्तीसगढ़ के जांजगीर-चांपा से लड़ा, लेकिन हार का सामना करना पड़ा। बसपा-गठन के समय ही उन्होंने अपने कार्यकताओं व समर्थकों से कह दिया था कि बसपा पहला चुनाव हारने के लिए, दूसरा चुनाव नजर में आने के लिए एवं तीसरा चुनाव जीतने के लिए लड़ेगी। 1988 के लोकसभा चुनाव में उन्होंने भावी प्रधानमंत्री वी॰ पी॰ सिंह के खिलाफ इलाहाबाद सीट से चुनाव लड़ा और शानदार प्रदर्शन किया, लेकिन 70 हजार वोटों से हार गये। वे 1989 में पूर्वी दिल्ली से लोक सभा चुनाव लड़े और चैथे स्थान पर रहे। सन 1991 में मुलायम सिंह यादव के सहयोग से इटावा लोकसभा क्षेत्र से भाजपा प्रत्याशी को 20 हजार मतों से मात देकर मान्यवर साहब ने 20 नवम्बर, 1991 को 11 बजे पूर्वाह्न में संसद में अपना पहला कदम रखा। वर्ष 1996 में होशियारपुर से 11वीं लोकसभा का चुनाव जीत दूसरी बार लोकसभा में पहुंचे। स्वास्थ्य खराब होने के कारण उन्होंने 2001 में सार्वजनिक रूप से बहन मायावती को अपना उतराधिकारी घोषित कर दिया।

मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के लिए कांशीराम के नेतृत्व में बसपा ने 1984 में 01 अगस्त से 14 अगस्त तक जेल भरो आंदोलन चलाया था और इस नारा को प्रचलित किया गया कि, 'मंडल कमीशन लागू करो, वरना कुर्सी खाली करो।'

कांशीराम ने 2002 में ही घोषणा कर दिया कि 14 अक्टूबर, 2006 को डॉ. अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन की 50वीं वर्षगाँठ के मौके पर अपने समर्थकों संग बौद्ध धर्म ग्रहण करूंगा। अफसोस निर्धारित तिथि से पांच दिन पहले ही 09 अक्टूबर, 2006 को कुशल राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, कुशल समाज शिल्पी, दार्शनिक एवं बहुजन ज्योति को जलाने वाले मान्यवर साहब अपने करोड़ों चाहने वालों को छोड़कर हमेशा के लिए चले गये। उनकी बौद्ध धर्म ग्रहण करने की मंशा अधूरी रह गई। बहुजन समाज सदा उनका ऋणी रहेगा।

(लेखक संप्रति जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। साथ ही राजद अतिपिछड़ा प्रकोष्ठ के प्रदेश प्रवक्ता हैं।)

■

कवि का पन्ना

राम बचन यादव

का करबे

भंइस चराइब सरकार भी चलाइब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

अबले त जुलुम पे जुलुम रे कइले
पोथी-पोथा पतरा से बड़ा डेरवइले
अब जुलुम ना सहब ना तोर कहल करब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

चापि-चापि अपने मलाई रे खइले
हमनीं के तनिको संघतिया ना भइले
अब ना डरब अधिकार आपन मांगब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

धरम बनवले सबके रे भरमवले
बरन अ जाति के जहर फइलवले
अब जाति ना मानब ना धरम तोर मानब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

हमरी कमाई पे मेवा रे कटले
छापा तिलक जोग झाला से लुटले
अब त बोलब भेद तोर खोलब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

पुरखन-पुरनियन से धोखवा रे कइले
हत्या पे हत्या कइके जसन मनवले
अब हम लड़ब गुलामी ना सहब
का करबे
बोल छलिया विदेसिया
का करबे।

■

नरेश नदीम

जड़ों की तलाश करती यात्राएं

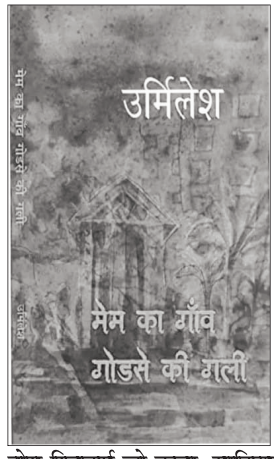

किताबः
मेम का गांव गोडसे की गली
लेखक : उर्मिलेश
पेज संख्या : 181
मूल्य : 250 /-
प्रकाशक : संभावना प्रकाशन रेवती कुंज, हापुड़-245101
मो. : 7017437410

'मेम का गांव, गोडसे की गली' प्रसिद्ध पत्रकार उर्मिलेश द्वारा कलमबद्ध यात्रा वृत्तांत का रोचक व ज्ञानवर्धक कोलाज है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक अपने पत्रकारीय जीवन में किये गए दिलचस्प व रोमांचक यात्रा- कथाओं से पाठकों को रू-ब-रू कराते हैं। कश्मीर से लेकर केरल तक फैले इन यात्रा-कथाओं में स्थायी महत्व की सूचनाओं और ज्ञान से हमारा सामना होता है। ये यात्रा वृत्तांत जितना भौगोलिक व सामाजिक परिवेश का वर्णन करते हैं उतना ही वैचारिक दुनिया की सैर कराते हैं। लेखक की स्थान विशेष से जुड़ी चिंतन यात्रा हमें उस वैचारिकी से लैस करती है जो मानवीय गरिमा और संवैधानिक मूल्यों का पृष्ठपोषण करती है।

'मेम का गांव, गोडसे की गली' में कुल बारह यात्रा वृत्तांत संकलित हैं, जो1997 से 2019 के बीच के 22 वर्षों के कालखंड में पसरी हुई हैं। पहला अध्याय है- 'कोच्चि में क्वीन।' हाल ही दिवंगत ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय सन 1997 के अक्टूबर माह में केरल की कोच्चि शहर के दौरे पर थीं, जो लेखक के पत्रकारीय यात्रा का कारण बना था। परंतु लेखक इस यात्रा के बहाने केरल की सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक विकास यात्रा की पड़ताल करते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता मेरी रॉय और राजनीतिक दिग्गज नंबूदरीपाद से हुई भेंटवाताओं के माध्यम से लेखक केरल उन परतों को खोलते हैं, जो इस तटीय प्रांत को हिन्दी भाषी राज्यों के समाज और राजनीति से अलग करती हैं। शिक्षा और चिकित्सा जैसे मानव विकास सूचकांक के आधार के मामले में यह राज्य अब्बल है तो उसका कारण है- समावेशी विकास की राजनीति करने वाले ईमानदार नेतृत्व की बहुलता तथा नारायण गुरु व अय्यंकली जैसे समाज सुधारकों की प्रेरणा। लेखक केरल की वामपंथी सरकार द्वारा शिक्षा व्यवस्था और भूमि सुधार के लिए उठाए गए बड़े कदम को इस राज्य को प्रगतिशील बनाने में महत्वपूर्ण कारक मानते हैं।

'मेम दा पिंड' यानी मेम का गांव की यात्रा में लेखक ने हिमाचल प्रदेश के धौलाधार पर्वत श्रेणी में बसे एक सूदूरवर्ती गांव का खुबसूरत वर्णन किया है, जिसका नाम है- अंद्रेटा। लेखक अपने यात्रा वृत्तांत में दर्ज करते हैं कि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब वहां पहुंचने के लिए न तो सड़क मार्ग रहा होगा और न ही बिजली पहुंची होगी तब आखिर वे कौन लोग थे जो अंद्रेटा को अपना स्थायी निवास बनाकर इसे इतना महत्वपूर्ण बना दिया कि कला व फिल्म जगत की प्रसिद्ध हस्तियां उन लोगों से मिलने कष्ट झेलते हुए पहुंच जाया करती थीं। आखिर यह गांव इतना महत्वपूर्ण क्यों है कि इसके बारे में हमें जानना चाहिए। लेखक के शब्दों में कहा जाए तो इस गांव में ऐसे लोगों की कहानियां बिखरी हुई हैं, 'संभवतः वे यहां मोहब्बत की दुनिया बसाने आए थे, जहां सब समान हों, सभी मिलजुल कर रहें, धर्म और वर्ण यहां आकर खत्म हो जाएं और सिर्फ मनुष्यता बची रहे!' इस गांव में सबसे पहले बसने वालों में से एक थीं- नोरा रिचर्ड्स। भारत की आजादी की समर्थक और यहां के लोगों को दिल से पसंद करने वाली नोरा रिचर्ड्स जो कला, साहित्य और रंगमंच में गहरी दिलचस्पी रखती थीं, 1911 में अपने पति की मृत्यु के बाद लाहौर से आकर अंद्रेटा में आकर बस गईं तो यहां कला प्रेमियों के बसने का सिलसिला शुरू हो गया। सरदार शोभा सिंह, प्रोफेसर जय दयाल और गुरुचरण सिंह जैसे शख्सियतों ने इस गांव में अपना आशियाना बनाया। पृथ्वीराज कपूर और बलराज साहनी जैसे कलाकार यहां आते-जाते रहे। लेखक के शब्दों में देश के विभिन्न भागों से यहां आने वाले कलाकारों के लिए नोरा रिचर्ड्स का घर 'चमेली निवास' कम्यून सा बन गया था, जहां विभिन्न तरह के प्रशिक्षण व कार्यशालाएं आयोजित होती रहती थीं। यह गांव हमारी साझी सांस्कृतिक विरासत का जीवंत दस्तावेज है। लेखक के अनुसार वे लोग समाज के लोगों की सामुहिक चेतना का विस्तार करने वाले लोग थे, जिन्होंने जीने की मकसद को अर्थवान बनाने के लिए कला और सृजन को मानवीय संवेदना और गरिमा से जोड़ा।लेखक की यह यात्रा-कथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अति मूल्यवान है।

'कितने बदनसीब रहे किंग थीबा' यात्रा वृत्तांत में लेखक हमें रत्नागिरी की सैर कराते हैं। पश्चिमी घाट के कोंकण इलाके में स्थित रत्नागिरी अलफांसो आम के लिए प्रसिद्ध है? तो उससे भी ज्यादा बाल गंगाधर तिलक की जन्मभूमि और विनायक दामोदर सावरकर की कर्मभूमि के लिए भी। उर्मिलेश दर्ज करते हैं कि चितपावन ब्राह्मणों के इस इलाके में जन्मे 'तिलक स्वाधीनता आंदोलन में एक संघर्षशील नेता थे लेकिन सामाजिक स्तर पर उनके अनेक विचार बेहद संकीर्ण थे।' बकौल लेखक रत्नागिरी में महात्मा गांधी की नृशंस हत्या के आरोप से साक्ष्य के अभाव में बरी किए गए सावरकर द्वारा विकसित एक मंदिर है, जहां हर जाति-वर्ण के व्यक्ति को आने-जाने की इजाजत है। लेकिन इस सबसे हटके वे रत्नागिरी से एक चौंकाने वाली सूचना देते हैं, वह है रत्नागिरी में किंग थीबा महल, जहां ब्रिटिश हुकूमत ने बर्मा के राजा को कैद कर रखा था। यात्रा-कथा में इतिहास के उस काले अध्याय को दर्ज. करते हुए उर्मिलेश लिखते हैं,'श्री लंका के राजा को वेल्लूर में लाकर बंद रखा गया था।' जिस तरह 1857 की क्रांति में स्वदेशी

शासन व सत्ता तथा हिंदू- मुस्लिम एकता के प्रतीक बन चुके मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को बंदी बनाकर बर्मा की राजधानी रंगून ले जाया गया। ठीक उसी तरह बर्मा के किंग थीबा को रत्नागिरी के महलनुमा किले में कैद कर रखा गया। आज भी उनके संततियों का एक हिस्सा भारत भूमि पर निवास करते हैं।

पुस्तक का चौथा अध्याय है- 'सावरकर और गोडसे की तंग गलियों में।' सावरकर परिवार और गोडसे से संबंधित ये गलियां पुणे स्थित हैं। पुणे स्थित इन गलियों में से एक में महात्मा गांधी के हत्या के आरोप से बरी कर दिये गए सावरकर का घर है-'सावरकर भवन।' लेखक के अनुसार,'मकान के बाहरी दीवार पर विनायक दामोदर सावरकर और नाथूराम गोडसे, दोनों के नाम दर्ज थे। मकान में रहने वाली हिमानी सावरकर नाथूराम गोडसे की अपनी भतीजी हैं। गोपाल गोडसे की बेटी।' महात्मा गांधी हत्या के सजा के तौर पर नाथूराम गोडसे को फांसी हुई थी, वहीं उनके छोटे भाई गोपाल गोडसे को उम्रकैद। जबकि सावरकर हत्या षड्यंत्र के आरोप से बरी हो गए थे। हिमानी सावरकर ने लेखक को इंटरव्यू के दौरान जवाब दिया था,'मुझे गर्व है कि ऐसे परिवार से जुड़ी हुई हूँ।' आज जब गांधी के हत्यारों को महिमा मंडित किया जा रहा है तब हिमानी सावरकर का 2004 में दिया गया वह जवाब शोर करने लगता है। इस यात्रा में वे गोपाल गोडसे का भी इंटरव्यू करते हैं,जो महात्मा गांधी की हत्या में उम्र कैद की सजा काट कर पुणे के ही एक गली में गुमनामी की ज़िंदगी जी रहे होते हैं। उर्मिलेश के साथ उस इंटरव्यू में गोपाल गोडसे स्वीकार करते हैं कि नथूराम का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ(फर) से कई वर्षों तक घनिष्ठ संबंध रहा। उस इंटरव्यू में कई चौंकाने वाले खुलासे होते हैं,जो लेखक की रत्नागिरी यात्रा की बड़ी उपलब्धि रही। यह इंटरव्यू दैनिक हिन्दुस्तान में छपा था। इस पुस्तक में लेखक ने अपनी आठ और यात्राओं का वृत्तांत दर्ज किया है। 'गोबिंद पानसारे के साथ कोल्हापुर की वह शाम', 'गाजीपुर में विवेकानंद, टैगोर और कार्नवालिस', 'बेंगलुरु में बढ़ता जोश और सिमटता जोश', 'मिलिटेंसी में महानायक को बुलाता समाज','बार-बार कारगिल', महबूबनगर वाया मिरियालगुड़ा-नालगोंडा', 'अध्यापकी के आखिरी इंटरव्यू के लिए', तथा 'नाम पुछने पर उसने कहाङ्घ।'

इन यात्रा कथाओं के साथ-साथ लेखक एक ऐसी विचार-यात्रा भी साथ लेकर चलते हैं, जो भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक ताने-बाने की खासियत, कमियों और उसकी जटिलताओं को समझने में हमें मदद करती हैं।

(मैथिली और हिन्दी में समान रूप से सक्रिय लेखक मधुबनी के रहनेवाले हैं।)

■

पत्रिका **सुरेश कुमार**

अधिकार के सौ साल

पत्रिका : स्त्रीकाल
संपादक : संजीव चन्दन
मूल्य : 100
पेज संख्या : 100
सम्पर्क : सी 401 मंगलम विहार अपार्टमेंट, आरा गार्डेन रोड पटना 800014
मो.: 8130284314

देखा जाए तो स्त्रीकाल पत्रिका स्त्री अधिकारों की दावेदारी का प्रश्न उठाती आ रही है। स्त्री अधिकारों की पहलकदमी में पत्रिका ने पितृसत्तावादी निर्मितियों की बड़ी तीखी आलोचना करती रही है। इन दिनों स्त्रीकाल का 'समता,अधिकार और आजादी' विशेषांक साहित्य हलकों और स्त्री विमर्शकारों के बीच चर्चा का विषय बना हुआ। यह विशेषांक मुख्यतौर पर सौ साल में स्त्री और दलित जीवन के सार्वजनिक और सामाजिक जीवन की तब्दीलियों और अधिकारों की गंभीर पड़ताल करता है। बीसवीं सदी का तीसरा दशक सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक और स्वाधीनतावादी सरगर्मियों से भरा रहा है। इस दशक में जहां स्वराज के प्रति ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारतीय गोलबंद हुए वहीं स्त्री और दलित अधिकारों की पहलकदमियों की आहट भी सुनाई देने लगी थी। इस अंक का संपादकीय लेख 1920 से लेकर अब तक स्त्री और दलित संघर्ष के अधिकारों और बदलाव पर बड़ी गंभीर रोशनी डालता है। औपनिवेशिक दौर से लेकर आजादी के बाद तक स्त्री आंदोलन को रेखांकित करता यह संपादकीय लेख बताता है कि पितृसत्तावादियों के चलते स्त्री अधिकारों की लड़ाई आसन नहीं रही है। सन 1920 में बिहार विधान मण्डल में स्त्री मताधिकारों की बहस इस अंक की खास उपलब्धि है। यह बहस बताती है कि बीसवीं सदी के तीसरे दशक की पितृसत्तावादी निर्मितियां किस कदर स्त्री अधिकारों में बाधा बनकर खड़ी थी। विभूति पटेल का लेख 'संविधान और स्त्री' भारतीय स्त्री के सबलीकरण में संविधान की भूमिका पर विस्तार से रोशनी डालता है। लेखिका हेमलता माहिश्वर अपने लेख 'भारतीय स्त्री अधिकार : एक ऐतिहासिक यात्रा' में रेखाकित करती हैं कि जोतीराव फुले और डॉ.आंबेडकर की स्त्री अधिकारों की पहलकदमी में बड़ी अहम भूमिका रही रही है। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में डॉ. आंबेडकर दलित अधिकारों के लिए जल सत्याग्रह के साथ स्त्री मुक्ति का भी अभियान चला रहे थे। इस अंक में मनोरमा का लेख पिछले दशकों में स्त्री आंदोलनों की भूमिका को बड़ी शिद्दत से रेखांकित करता है। भारतीय सुधारकों ने आजादी के पूर्व से ही स्त्री अधिकारों की दावेदारी के लिए पहलकदमियां और कवायदों को अंजाम देना शुरू कर दिया था। जब आजादी अंगड़ाई ले रही थी, उसी समय डॉ.भीमराव आंबेडकर ने आधी आबादी के अधिकारों की दावेदारी के लिए हिन्दू कोड बिल का प्रारूप सदन में प्रस्तुत किया था। मोटे तौर पर देखा जाए तो हिन्दू कोड बिल स्त्री अधिकारों की दावेदारियों का कानूनी घोषणा पत्र था। डॉ. आंबेडकर के इस कोड बिल का सदन से लेकर बाहर तक पुरजोर विरोध किया गया था। स्त्रीकाल के इस अंक में हिन्दू कोडबिल पर प्रसिद्ध लेखिका शर्मिला रेगे का बड़ा गंभीर लेख है। इसी के साथ सदन में हिन्दू कोडबिल पर जो चर्चा हुई थी उस बहस को भी इस अंक में पढ़ा जा सकता है।

(लेखक हिन्दी के महत्वपूर्ण शोधार्थी हैं।)

■

डॉ. जैनेन्द्र दोस्त

रामचंद्र मांझी : लोकनाट्य विधा "लवंडा नाच" के समर्पित कलाकार

रामचंद्र मांझी : अभिनय की विभिन्न मुद्राओं में

भोजपुरी नाच कला एवं संस्कृति के सिरमौर भिखारी ठाकुर के संगी कलाकार पद्मश्री रामचंद्र मांझी का पिछले महीने की 07 तारीख को देहावसान हो गया। भिखारी ठाकुर के साथ काम करते हुए रामचंद्र मांझी ने अपने नाटकों में विस्थापन (बिदेसिया नाटक), नशाखोरी (पिया निसइल नाटक), स्त्रियों की समस्या (बेटी-बेचवा तथा विधवा-विलाप नाटक) आदि से लगभग अस्सी वर्ष तक समाज को चैतन्य किया। उनकी उपलब्धियों को देखते हुए कला संस्कृति एवं युवा विभाग (बिहार सरकार) द्वारा वर्ष 2021 में लाइफ टाइम एचीवमेंट कला पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी (दिल्ली) द्वारा वर्ष 2017 में राष्ट्रपति के हाथों संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं वर्ष 2021 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

रामचंद्र मांझी उस लौंडा नाच विधा के अहम कलाकार थे,जिसे कुछ साल पहले तक गंवई एवं कस्बाई समाज के किसान मजदूरों की अभिव्यक्ति और मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता था। वे भिखारी ठाकुर से प्रशिक्षित हुए थे। उनके साथ लगभग तीस वर्षों तक कार्य किया। वह दुसाध समुदाय से आते थे। पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन अभिनय का उनका हुनर कईयों पढ़े-लिखों पर भारी पड़ता था। उनके जन्म का कोई लिखित प्रमाण नहीं है। सरकारी पहचान पत्र को आधार मानें तो उनका जन्म का वर्ष 1930 का है। कुछ महीने पहले तक वह खुद को 98 वर्ष का बताते थे। इतनी अधिक उम्र होने के वावजूद रामचंद्र मांझी भिखारी ठाकुर रंगमंडल प्रशिक्षण एवं शोध केंद्र, छपरा (बिहार) के एक अहम कलाकार थे। अभी भी भिखारी ठाकुर के हर नाटक में मुख्य भूमिका में वही होते थे।

रामचंद्र मांझी और मैं एक ही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से थे। बिहार राज्य के छपरा जिले में अवस्थित हम दोनों के गांव में लगभग दस किलोमीटर का फासला है। उनसे पहली बार मैं वर्ष 2010 में मिला। उस वक़्त तक वह लगभग नाच छोड़ चुके थे। किसी-किसी सरकारी कार्यक्रम में इक्का-दुक्का बुलावे पर जाते थे। वर्ष 2012 में जेएनयू से मैंने अपना रिसर्च विषय जब लौंडा नाच एवं भिखारी ठाकुर को चुना तो इसी दरम्यान रामचंद्र मांझी के साथ काम करने, उनसे सिखने, उन्हें डॉक्युमेंट करने का मौका मिला। उस वक़्त तक उनके नाम और काम से शहरी सांस्कृतिक एवं अकादमिक जगत अनभिज्ञ था। धीरे-धीरे उनसे दोस्ती हुई और बातचीत का लंबा सिलसिला शुरू हुआ। यह बातचीत कभी मंच पर तो कभी मंच के पीछे तो कभी सामान्य मुलाकातों में होती। भिखारी ठाकुर पर डॉक्युमेंटरी फिल्म बनाते वक़्त उनसे लगातार बात होती रही। 2012 में उनसे पूछा था कि आपके जैसे और कितने लोग जीवित हैं जिन्होंने भिखारी ठाकुर के नाच में काम किया है? उन्होंने कहा था कि मेरी तरह पांच लोग जीवित हैं, लेकिन सबसे ज्यादा उम्र का एवं भिखारी ठाकुर के साथ सबसे ज्यादा समय तक काम करने वाला मैं ही जीवित हूं। रामचंद्र मांझी के अलावे उस वक़्त तक गोपाल राम, शिवलाल बारी, लखिचंद मांझी, रामचंद्र मांझी छोटे जीवित थे। गोपाल राम वर्ष 2014 में एवं शिवलाल बारी वर्ष 2021 में इस दुनिया को अलविदा कह चुके हैं।

रामचंद्र मांझी कहते थे कि मैं भिखारी ठाकुर की नाच मंडली में तब से हूं जब सिनेमा में आवाज नहीं हुआ करती थी। तब से लेकर अब तक मैं सिर्फ उन्ही की नाच मंडली में रहा हूं।

वह स्त्री भूमिका करने के लिए प्रसिद्ध थे। भिखारी ठाकुर के नाटकों में रामचंद्र मांझी द्वारा अभिनीत स्त्री भूमिकाओं की सूची लंबी है। उन्होंने बिदेसिया(रखेलिन),गबरघिचोर(गलीज बहु),बेटी-बेचवा (हजामिन),पियानिसइल(रखेलिन),गंगा-स्नान(मलेछू बहु),पुत्र-बध(छोटकी)भाई-बिरोध(छोटकी),कृष्णलीला(यशोदा), ननद-भाउजाई(भाउजाई),बिधवा-बिलाप(बिधवा स्त्री), बिरहा-बाहर (धोबिन) और राधेश्याम-बहार (यशोदा) सरीखे नाटकों में स्त्री पात्रों का अभिनय किया। बिदेसिया नाटक में रखेलिन के किरदार को अपने अभिनय, गायकी एवं नृत्य से एक ऐसी ऊंचाई प्रदान किया जिसके आसपास फटकना भी आज के रंगकर्मियों के लिए बड़ी चुनौती है। 12

रामचंद्र मांझी : अभिनय की विभिन्न मुद्राओं में

वर्ष की उम्र में वे भिखारी ठाकुर के नाच दल से जुड़े थे। भिखारी ठाकुर से पहले उन्होंने पड़ोस के ही दीनानाथ मांझी की नाच मंडली में नाच का प्रशिक्षण लेना एवं नाचना-गाना शुरू कर दिया था। उसके बाद उन्हें भिखारी ठाकुर के नाच पार्टी में शामिल होने का ऑफर मिला। जहां उन्होंने आंगिक-वाचिक अभिनय सहित धोबिया नाच, नेटुआ नाच, गजल, कव्वाली, निर्गुण, भजन, दादरा, खेमटा, कजरी, ठुमरी, पूर्वी, चइता गायन का बारीक प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षण के पश्चात भिखारी ठाकुर कृत सभी नाटकों में मुख्य कलाकार के रूप में भूमिका अभिनीत की। भिखारी ठाकुर के एक-एक नाटकों की उन्होंने हजारों हजार प्रस्तुतियां विभिन्न समारोहों में की थीं।

नाच एक सामाजिक कला है। नाच के हर गीत, नृत्य और नाटक के विषय-वस्तु समाज से जुड़ी हुई घटनाओं,सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधयों से जुड़ा होता है। हालांकि कई सारे नाच में लोकगाथाओं एवं राज-महाराजा की कहानियां हुआ करती हैं परंतु भिखारी ठाकुर ने अपने नाच को लोकगाथाओं एवं राजा-महाराजा की कहानियों से मुक्त कर तत्कालीन समय और समाज की रोजमर्रा की ज़िंदगी और उनकी समस्याओं से जोड़ दिया।

रामचंद्र मांझी के पास भिखारी ठाकुर से जुड़े ढेरों संस्मरण थे जो वह सुनाया करते। 'भिखारी ठाकुर हमेशा कहते थे कि हमारा नाच सामाजिक नाच है। यह समाज के इज्जत-प्रतिष्ठा के लिए है। नाच में हमें सामाजिक मयार्दा का हमेशा ध्यान रखना है। हमें हमेशा ऐसी कला का सृजन करना है कि बाप-बेटा, ससुर-दामाद, मां-बेटी, बच्चे-बूढ़े सब एक साथ देख सकें।'

भिखारी ठाकुर रंगमंडल प्रशिक्षण एवं शोध केंद्र (छपरा) में बतौर अभिनेता एवं प्रशिक्षक कार्य करते हुए रामचंद्र मांझी ने वर्ष 2014 से अबतक देश के कई सम्मानित रंगमहोत्सवों में अपनी प्रस्तुतियां दी हैं। जिसमें : गमक-2021, भारत रंग महोत्सव-2020 ,वसंत नाट्योत्सव -2020 (मुंबई विश्वविद्यालय), संगीत नाटक अकादेमी अवार्ड सेरेमनी-2019, (मेघदूत, दिल्ली), अभिनयन-2019 (ट्राइबल म्यूज़ियम, भोपाल), भिखारी ठाकुर जयंती उत्सव-2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021 (छपरा, बिहार), भिखारी ठाकुर रंग महोत्सव-2016, 2018, 2019, (छपरा, बिहार), भिखारी ठाकुर रंगमंच शताब्दी समारोह-2017 (छपरा, बिहार), देशज-2016 (आजमगढ़, उ. प्र.), संस्कृति संगम-2017 (नालंदा, बिहार), नाट्य समागम-2015 (अगरतला, त्रिपुरा), नाट्य समागम-2015 (गुवाहाटी, असम), नाट्य समागम-2016 (दिल्ली), लोक जात्रा-2017(मोतिहारी, बिहार), देशज-2015 (पुस्तक मेला, पटना), सिरजन - 2016 (इलाहाबाद) राष्ट्रीय लोक नाट्य महोत्सव-2017 एवं 2018 (मधुबनी, बिहार),छठ महोत्सव-2017 (गुड़गांव, हरियाणा), भिखारी ठाकुर के रंगमंच के सौ वर्ष-2017 (जेएनयू, दिल्ली), भिखारी ठाकुर रंगमंडल प्रशिक्षण एवं शोध केंद्र (छपरा) एवं मैथिली भोजपुरी अकादेमी (दिल्ली) आदि मुख्य रूप से मशहूर रहे हैं।

बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव को लौंडा नाच बहुत पसंद था। उन्होंने कई बार रामचंद्र मांझी के नाच दल को अपने पटना स्थित आवास पर बुला कर भिखारी ठाकुर का नाच देखा एवं उन्हें सम्मानित किया। उन्होंने अपने शासन काल में लौंडा नाच को बिहार की सांस्कृतिक पहचान के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया था। उन्होंने लौंडा नाच को अपने राजनैतिक प्रचार के लिए भी खूब उपयोग किया। मुख्यमंत्री रहते हुए कई कलाकारों के घर भी बनवाये। रामचंद्र मांझी कहते थे कि 'लालू यादव हमेशा खांटी चीज पसंद करते थे। उन्हें भिखारी ठाकुर का नाच बहुत पसंद था। जब मैं उनके यहां कार्यक्रम करता था तो वो खुश हो कर मुझे अलग से इनाम देते थे।' बकौल रामचंद्र मांझी 'एक बार लालू जी ने मेरा कार्यक्रम देखा और कहा कि रामचंद्र नाच को नहीं छोड़ना है। इस कला को जीवित रखना है। उनके कहने पर ही बूढ़ा हो जाने के बाद भी मैं इस नाच को जीवित किए हुए हूं।' उपरोक्त बातों से हम लालू प्रसाद यादव एवं रामचंद्र मांझी के न सिर्फ सबंधों को समझ सकते हैं बल्कि नाच कला एवं संस्कृति को संरक्षित करने हेतु इनके विचारों को भी गहराई से समझ सकते हैं।

नाच के इंसाइक्लोपीडिया रामचंद्र मांझी के जाने के बाद नाच के युग का अंत जैसे हुआ है। रामचंद्र मांझी ने जाते-जाते नाच कला और समाज के समक्ष कुछ ऐसे उदाहरण पेश किये हैं जिसे दोहरा पाना तो मुश्किल है परंतु उससे सिख लेने की जरूरत है।

(लेखक ने भिखारी ठाकुर की नाच परंपरा पर जेएनयू से एम.फिल. एवं पीए.चडी. की है। भिखारी ठाकुर पर इनके द्वारा निर्मित डाक्यमेंट्री फिल्म चर्चा में है।)

■

नवनीत कुमार

सभी दलों की एकजुटता ही भाजपा मुक्त देश का रास्ता

राष्ट्रीय जनता दल का दिल्ली अधिवेशन

"यह कार्यक्रम ऐसे समय में हो रहा है जब देश में इमरजेंसी जैसी हालात है। भाजपा के राज्य में इमरजेंसी है और तानाशाही चरम पर है। आज लोकतंत्र और संविधान को ध्वस्त किया जा रहा है। सामाजिक न्याय और धर्म निरपेक्षता हमारे खून में है, बुनियाद में है। आपलोगों को मालूम है कि जब मण्डल कमीशन लागू हुआ तो भाजपा वाले कमण्डल लेकर निकले थे और हमलोगों पर जातिवाद फैलाने का आरोप लगाते थे। ये लोग आरक्षण विरोधी लोग हैं। बाद में इन्हें झुकना पड़ा और मजबूर होकर आरक्षण को मानना पड़ा। "

ये बातें राजद के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री लालू प्रसाद ने देश की राजधानी दिल्ली के लाल कटोरा स्टेडियम में 10 अक्टूबर, 2022 को आयोजित राष्ट्रीय जनता दल के खुला अधिवेशन में कहीं। इस मौके पर राजद के मुख्य राष्ट्रीय निर्वाचन पदाधिकारी उदय नारायण चौधरी तथा मुख्य राष्ट्रीय सहायक निर्वाचन पदाधिकारी चितरंजन गगन द्वारा लालू प्रसाद को निर्विरोध राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित होने का प्रमाण भेंट किया गया। लालू प्रसाद बारहवीं बार राष्ट्रीय जनता दल के निर्विरोध राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए। 05 जुलाई, 1997 से या यूं कहें कि राजद के गठन से ही निरंतर लालू प्रसाद निर्विरोध राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित होते आ रहे हैं। 10 अक्टूबर, 2022 को राजद का बड़ा व भव्य कार्यक्रम आयोजित होना प्रस्तावित था,लेकिन समाजवादी नेता मुलायम सिंह यादव के निधन की सूचना मिलते ही कार्यक्रम को संक्षेप में करने का निर्णय लिया गया। खुला अधिवेशन में मुलायम सिंह यादव के तैलचित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए राजद के नेताओं ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। राष्ट्रीय अध्यक्ष की औपचारिक घोषणा के पश्चात राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव ने अपने संबोधन में कहा कि नेताजी के निधन के बाद मैंने बिहार के माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी को राय दिया कि बिहार में राजकीय शोक घोषित किया जाए। मुख्यमंत्री ने एक दिन का राजकीय शोक घोषित कर दिया है। आज हमलोग ऐसे समय में यहां एकजुट हुए हैं जब नेताजी के जाने के बाद पूरा देश मर्माहत है। नेताजी, शरद जी एवं मैं, तीनों भाई लोकसभा में रहकर पूरे लोकसभा को जागरूक और लड़ाकू बनाया है। उसमें से एक नेताजी हमारे बीच से उठ गए। आगे उनकी क्षतिपूर्ति मुश्किल है।

महागठबंधन की चर्चा करते हुए लालू जी ने कहा कि हम लोग अभी बिहार में महागठबंधन बनाये हैं और अलग-अलग राज्यों में भी बनाएंगे। 2024 में नरेन्द्र मोदी को सत्ता से उखाड़ फेंकेंगे। मैं सभी कार्यकर्तागण और पदाधिकारी गण को एडवाइज देता हूं कि सभी को एकजुट होकर रहना चाहिए। एकता के बल पर ही पूरे देश में मजबूती ला सकते हैं। इन लोगों ने पूरी सोसायटी को कम्युनलाइज कर दिया है। हर बात में हिंदू-मुसलमान और मन्दिर-मस्जिद करते रहते हैं। लालू यादव ने महंगाई और बेरोजगारी जैसे मुद्दों को भी मजबूती से अपने सम्बोधन में उठाया। उन्होंने एक नारा के साथ बताया कि, "कमरतोड़ महंगाई है, जब से भाजपा आई है।' उन्होंने कहा कि आज बेरोजगारी चरम पर है। इन्होंने बोला था कि स्विस बैंक से कालाधन लाकर सभी देशवासियों के खाते में 15-15 लाख रुपये दिया जाएगा। नरेन्द्र मोदी को जवाब देना होगा। आखिर क्यों झूठ बोला? ये लोग झूठ-फरेब के बल पर शासन में आये हैं। आज पूरे देश के लोग समझ गए हैं कि नरेन्द्र मोदी और भाजपा को अब हटाना चाहिए। देश के सभी विपक्षी

व क्षेत्रीय दलों को कांग्रेस के साथ मिलकर एक अम्ब्रेला के नीचे आना होगा, जो पार्टी नहीं आएगी उसे देश की जनता माफ नहीं करेगी।जाँच एजेंसियों के दुरुपयोग पर भाजपा को आड़े हाथों लेते हुए उन्होंने कहा कि जब-जब हमलोग इनके खिलाफ आवाज उठाते हैं और गोलबंद होते हैं तो ये लोग ईडी और सीबीआई का छापा मरवाने लगते हैं। छापा से हमलोग डरने वाले हैं क्या? भाजपा का मतलब भारत जलाओ पार्टी है।

वरिष्ठ नेता शरद यादव ने अपने संबोधन में कहा कि, डॉ. अम्बेडकर, महात्मा फुले आदि महापुरुष वंचित समाज के लिए काम किये हैं।देश के गरीब-वंचितों कीपार्टी राजद है। बिहार के महागठबंधन ने नए भारत के निर्माण का संकल्प लिया है।

कार्यक्रम का संचालन राष्ट्रीय प्रवक्ता सह सांसद डॉ. मनोज झा ने किया और पिछले तीन साल के पार्टी की गतिविधियों का प्रतिवेदन राष्ट्रीय प्रधान महासचिव अब्दुल बारी सिद्दीकी ने प्रस्तुत किया। (पाठक अगले अंक में इसे विस्तार से पढ़ सकेंगे।)

सांगठनिक चुनाव पर प्रतिवेदन पार्टी के मुख्य राष्ट्रीय निर्वाचन पदाधिकारी उदय नारायण चौधरी ने प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में बताया कि दिनांक 10 फरवरी, 2022 को पटना में हुए राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में पार्टी की नियमावली के धारा-19 के उपधारा (1) के अनुसार मुझे राष्ट्रीय निर्वाचन पदाधिकारी का दायित्व सौंपा गया, साथ ही हमें सांगठनिक चुनाव के कार्यक्रम को निर्धारित करने के लिए अधिकृत किया गया।मेरे द्वारा पार्टी संविधान धारा-28 के तहत देश के 26 राज्यों में राज्य निर्वाचन पदाधिकारी एवं सहायक राज्य निर्वाचन पदाधिकारी की नियुक्ति की गई, उन्हें अपने-अपने राज्यों में जिला निर्वाचन पदाधिकारी मनोनीत कर पार्टी संविधान द्वारा दिए गए निर्देश और मेरे द्वारा निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीके से चुनाव कराकर राष्ट्रीय कार्यालय दिल्ली में एवं राष्ट्रीय चुनाव कैम्प पटना को प्रतिवेदित करने का निर्देश दिया गया। विभिन्न स्तर के चुनाव पदाधिकारों के मेहनत का प्रतिफल है कि निर्धारित कार्यक्रम के तहत समय पर विधिवत रूप से चुनाव कराकर प्राथमिक सदस्य, बूथ इकाई, पंचायत इकाई, प्रखण्ड इकाई, जिला इकाई एवं देश के 26 राज्यों में इकाई का गठन किया जा चुका है। राज्य स्तर पर चुनाव सम्पन्न होने के पश्चात 26 सितम्बर, 2022 को राष्ट्रीय परिषद के सदस्यों की सूची को तदर्थ प्रकाशित किया गया। प्राप्त आपत्तियों के पश्चात 27 सितम्बर, 2022 को राष्ट्रीय परिषद के सूची को केंद्रीय कार्यालय दिल्ली, केंद्रीय कैम्प कार्यालय पटना एवं सभी राज्य इकाइयों के कार्यालयों में अंतिम रूप से प्रकाशित कर दिया गया। पूर्व से घोषित कार्यक्रम के आलोक में 28 सितम्बर, 2022 को राष्ट्रीय अध्यक्ष पद के लिए नामांकन लिया गया। लालू प्रसाद द्वारा पांच प्रतियों में नामांकन दाखिल किया गया। प्रत्येक नामांकन प्रति में राष्ट्रीय परिषद के दस-दस सदस्यों के नाम थे। नामांकन के लिए निर्धारित समय पूर्वाह्न 11 बजे से अपराह्न 12 बजे के बीच किसी अन्य अभ्यर्थी या उनके प्रस्तावक द्वारा कोई नामांकन पत्र दाखिल नहीं किया गया। मैं अपने मुख्य सहायक राष्ट्रीय निर्वाचन पदाधिकारी चितरंजन गगन के साथ लालू प्रसाद द्वारा दाखिल नामांकन पत्रों की जांच की गई, जिसमें पांचों प्रतियों को वैध पाया गया। दिनांक 28 सितम्बर, 2022 को अपराह्न 3 बजे से 4 बजे तक नामांकन वापस लेने का समय निर्धारित किया गया था। राष्ट्रीय अध्यक्ष पद के लिए सिर्फ एक लालू प्रसाद जी का ही दाखिल किया गया था, जिसे वापस नहीं लिया गया। इसलिए नाम वापसी का समय खत्म होने के बाद राष्ट्रीय जनता दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में लालू

तेजस्वी प्रसाद यादव

भाजपा को शिकस्त देना ही सबसे बड़ा एजेंडा है

देश की राजधानी दिल्ली के ताल कटोरा में हमलोग ताल ठोंकने आये हैं कि 2024 की चुनौती को स्वीकार करते हैं। पूरे देश में भाजपा विपक्षी दलों और क्षेत्रीय दलों की सरकारों को तोड़ने गिराने में लगी है। खरीद-फरोख्त व डरा-धमका कर सरकार गिराना उनका मकसद यह गया है। हम आदरणीय लालू प्रसाद जी का धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसा फैसला किया कि जो भाजपा औ? राज्यों में सरकार गिरा रही थी, उसी भाजपा को बिहार में सरकार से बाहर करने का काम किया गया। आज बिहार में महागठबंधन की सरकार है। सात दल महागठबंधन में एक साथ हैं। भाजपा अकेले विपक्ष में रह गई है। दिल्ली आकर इस अधिवेशन को करने का एक ही उद्देश्य है कि देश में जितने विपक्षी तथा क्षेत्रीय दल हैं, जो चाहते हैं कि भाजपा को सत्ता से हटायें उन्हें एकजुट करने का संदेश दिया जाए। आज देखियेगा बिहार में जो हुआ है, उससे लोगों में एक उम्मीद, एक आशा पैदा हुई है और देश के लोग व सभी विपक्षी पार्टियों के लोग कह रहे हैं कि अगर बिहार ने करके दिखाया है तो देश भी करके दिखा सकता है। राष्ट्रीय जनता दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष आदरणीय लालू प्रसाद यादव जी एवं बिहार के माननीय मुख्यमंत्री आदरणीय नीतीश कुमार जी इस दिशा में भरपूर प्रयास कर रहे हैं। हम महागठबंधन करके बिहार में सत्ता से भाजपा को भगाये हैं और केंद्र की सत्ता से भाजपा को भगाने के लिए सभी विपक्षी व क्षेत्रीय नेताओं से मिल रहे हैं। हमलोगों की कोशिश होगी कि सबलोग एक प्लेटफॉर्म पर एक साथ आयें। अपने ईगो को त्यागें। यह व्यक्तिगत स्वार्थ की बात नहीं है, यह एक बड़ी लड़ाई है। यदि देश को बचाना है तो एक साथ आना होगा और मिलकर लड़ना होगा। महागठबंधन में हमलोग सात दल एक साथ हैं। किसी के बहकावे में नहीं आना है। बहुत साजिशें होंगी, बहुत षड्यंत्र होगा, लेकिन हमलोग को एक रहकर उसका जवाब देना होगा।

आजादी के बाद 75 सालों में चाय बेचने वाले मोदी जी देश के प्रधानमंत्री तक बन गए लेकिन इन्होंने अपने आठ साल की सरकार में एमबीए तथा इंजीनियरिंग किये हुए लड़कों को चाय तथा पकौड़े के दुकान पर पहुंच दिया। आज आठ सालों में देश बबार्दी के कगार पर खड़ा है। देश की सरकारी संपत्तियों को बेचा जा रहा है। संविधान की जगह आरएसएस का एजेण्डा लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। किसान, मजदूर, नौजवान सबलोग परेशान हैं। सब महंगाई का मार झेल रहे हैं। यही भाजपा के लोग गाते थे कि महंगाई डायन खाये जात है। आज महंगाई, डायन की जगह भौजाई लगने लगी है। भाजपा के लोग छलिया और कपटी लोग हैं। ये लोग केवल जनता को धोखा देने का काम करते हैं। सिर्फ वोट की राजनीति करते हैं। इनको देश की सेवा से कोई मतलब नहीं है। इन्हें गरीबों से कोई मतलब नहीं है।...आज दिल्ली का एक भाजपा एमपी ज्ञान बांट रहा था कि जो मुसलमान रेहड़ी पर फल बेचते हैं, गुमटी में दुकान खोलते हैं, वहां से कोई सामान मत खरीदो हिंदू भाइयों! उस सांसद और भाजपाइयों को पता नहीं है क्या कि डीजल-पेट्रोल मुस्लिम देशों से ही आता है।डीजल-पेट्रोल लेना बन्द करेंगे क्या? कई मुस्लिम देशों में हमारे देश के लोग नौकरी करते हैं, यदि उन देशों में वहां के लोग ऐसे करने लगें तो हमारे देश से जाकर नौकरी करने वाले लाखों-करोड़ों लोग सड़क पर आ जाएंगे। भाजपा के इसी सोच के कारण आज देश की आर्थिक स्थिति चौपट हो गई है।

जब तक छोटी जातियों को, चाहे अतिपिछड़े समाज के हों या दलित समाज के हों, उनको जबतक सीने से नहीं लगाइएगा तबतक आप अपने मकसद को हासिल नहीं कर सकते। मैं सभी से हाथ जोड़कर कहना चाहूंगा कि आपलोग गांव व टोले में जहां भी जाइये तो झुककर अतिपिछड़ों तथा दलित को सीने से लगाइए। वह हमारा कमजोर तबका है, बैक बेंचर है, समाज के अंतिम पायदान पर रहता है। उसकी रक्षा भी करना है और उसके सुख-दुःख का भागीदार भी बनना है। हमलोग को उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए अपने स्वभाव में परिवर्तन लाना होगा। यह सबों की पार्टी है और इसी से भाजपा वालों को बहुत दिक्कत है। अब तो सवर्ण जाति के लोग खुलकर मुद्दे की बात करने लगे हैं। सब लोग बेरोजगारी पर बोलने लगे हैं। अब सबको बीजेपी का मतलब बड़का झूठा पार्टी लगने लगा है। 2020 के विधानसभा चुनाव में राजद को सबों का वोट मिला है, चाहे दलित हो याअगड़ा-पिछड़ा। इसलिए हमें सभी वर्गों के हितों की रक्षा करनी है।

(माननीय उप मुख्यमंत्री के दिये गये भाषण का संपादित अंश)

प्रसाद के नाम की अधिसूचना जारी कर दी गई। नवगठित राष्ट्रीय परिषद द्वारा विधिवत रूप से राष्ट्रीय अध्यक्ष घोषित किया गया।

खुला अधिवेशन से एक दिन पूर्व 09 अक्टूबर, 2022 को दिल्ली के एनडीएमसी कन्वेंशन हॉल में राष्ट्रीय जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी एवं परिषद की बैठक की गई जिसमें कई प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए और विचार-विमर्श के उपरांत उसे मंजूरी मिली। इन्हीं प्रस्तावों को खुला अधिवेशन में भी प्रस्तुत किया गया, जिसपर सभी राजद कार्यकताओं और पदाधिकारों ने दोनों हाथ उठाकर सर्वसम्मति से स्वीकृति प्रदान की। जयप्रकाश नारायण ने राजनीतिक प्रस्ताव, तनवीर हसन ने आर्थिक प्रस्ताव एवं सत्यानंद भोक्ता ने विदेश नीति प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उपर्युक्त प्रस्तावों में मुख्य रूप मोदी सरकार की गलत नीतियों पर निशाना साधा गया और महागठबंधन के बिहार मॉडल तथा अपनी विचारधारा के अनुरूप एजेण्डे को प्रस्तुत किया गया।

आर्थिक प्रस्ताव में मोदी सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना की गई है। नोटबंदी, जीएसटी का गलत क्रियान्वयन, बीमा कंपनियों और बैंकों की विक्री,सिविल एविऐशन और रेलवे का निजीकरण, पूंजीपतियों के फायदे वाला कृषि कानून और निजी विश्वविद्यालयों का बढ़ावा देने की केन्द्र सरकार की नीति को जनविरोधी बताया गया। वहीं विदेश नीति संबंधी प्रस्ताव में पड़ोसी देशों से वर्तमान सरकार के खराब संबंधों का हवाला देते हुए कहा गया है कि बांग्लादेश, भूटान, मालदीव, नेपाल एवं श्रीलंका भी अब चाइना के साथ हो रहे हैं। ये संबंध केंद्र सरकार की विदेश नीति पर सवालिया निशान लगा रहे हैं। महागठबंधन के 'बिहार मॉडल' को देश के स्तर पर लीड करने, सांप्रदायिकता के खिलाफ किसी तरह से समझौता नहीं करने और देश स्तर पर भी जातिगत गणना कराने का राजनीतिक प्रस्ताव पारित किया गया। आगे कहा गया कि दिल्ली की सत्ता में काबिज लोगो की शह पर देश की गंगा-जमुनी विरासत को समाप्त करने और उन्माद का माहौल बनाया जा रहा है। लालू जी ने 2014 में ही कहा था कि भाजपा सरकार में आयी तो देश टूटेगा। राजद न्यायपालिका में भी आरक्षण की हिमायती है।

पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव भोला यादव ने संविधान संशोधन एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष को कुछ अधिकार के लिए अधिकृत करने के सम्बंध में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि राष्ट्रीय जनता दल के संविधान एवं नियम के धारा-35 के अंतर्गत संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार तथा धारा-30 के तहत पार्टी का नाम व चुनाव-चिन्ह के सम्बंध में अंतिम निर्णय राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू जी या तेजस्वी प्रसाद यादव का ही होगा। लालू जी ने स्पष्ट शब्दों में यह भी कह दिया कि तेजस्वी प्रसाद यादव ही पार्टी के सर्वेसर्वा होंगे, वे ही पार्टी के सभी नीतिगत फैसला लेंगे। दूसरे नेता तेजस्वी को राय दे सकते हैं। लालू यक्ष ने महागठबंधन को लेकर भी नेताओं द्वारा टिका-टिप्पणी न करने की नसीहत दे डाली और महागठबंधन पर बोलने के लिए सिर्फ तेजस्वी प्रसाद यादव को अधिकृत किया गया।

(साथ में उत्पल बल्लभ और डॉ. विनोद पाल।)

राष्ट्रीय जनता दल कार्यालय, बिहार द्वारा आदेशित तथा यूनाईटेड पिंटर्स एण्ड सर्विस प्रोभाइडर, सन्दलपुर, पटना द्वारा मुद्रित, मो.-8434977434